CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रीविष्णुशर्मकृतं-

पञ्चतन्त्रक्रम्

'अभिनवराजलक्ष्मी'टीकाऽलङ्कृतम् ।

तस्य —

मित्रभेदो नाम प्रथमं तन्त्रम् ।

[तस्य चाऽयं कम्बुग्रीवकथान्तो भागः] ।

[मध्यमपरीक्षोपयोगि संस्करणम्]

संस्कर्त्ता-

आचार्य-श्रीमीनारामशास्त्री,

'व्याकरणाचार्यः', 'साहित्यरत्नः', 'राजशास्त्री',

प्रिन्सिपल--सेठ-श्रीराधाकृष्णपोद्दार-संस्कृतविद्यालय,

(रामगढ़-जयपुर) ।

प्रकाशकः-

भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, बनारस १.

शाखा-कचौड़ीगली, बनारस । [मूल्य १)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

1003 32 698

स्नेहिरामशास्त्रिणां (चिरावा-जयपुर) स्मारकं-
ान-संस्कृत-कालेज-ग्रन्थमालाया द्वादशङ्कुसुमम् ।

पञ्चतन्त्रकम्

ागिन्या विस्तृतया 'अभिनवराजलक्ष्मी'-
ामाख्यया टीकया विराजितम् ।

वाऽयं मित्रभेदीयः कम्बुग्रीवकथान्तो भागः] ।

कर्त्ता—आचार्य-श्रीसीतारामशास्त्री,
ाचार्यः', 'राजशास्त्री', 'साहित्यरत्नम्' ।
ाधाकृष्णपोद्दार-संस्कृत-विद्यालय, रामगढ़, जयपुर ।

Mahavir Jain's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya
531

टीकाकार:—
श्रीगुरुप्रसादशास्त्री,
रणाचार्यः, न्यायाचार्यः, दर्शनाचार्यः ।
ाजस्थान-संस्कृत-कालेज, मोरघाट, वाराणसी] ।

रीक्षोपयोगि शुद्धं संस्करणम्] ।

प्रकाशकः—
पुस्तकालय, गायघाट, बनारस १.
ाह्म-कचौड़ीगली, बनारस ।

सं. २००७ [मूल्यं १)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकाशक–
पं० कैलाशनाथ भार्गव 'अमर'
अध्यक्ष–भार्गवपुस्तकालय, गायघाट,
बनारस १.
ब्रांच–कचौड़ीगली, काशी ।

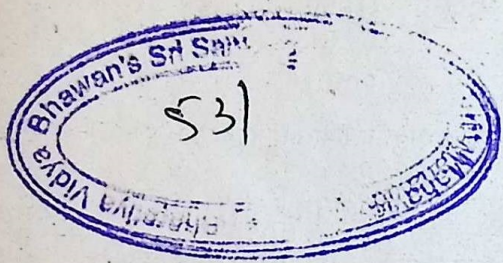

सर्वाधिकार सुरक्षित

भारतीय विद्या भवन
नई दिल्ली
श्री/श्रीमती/कुमारी.....
को.....परीक्षा.....में
उत्तीर्ण होने पर पुरस्कृत की गई
मंत्री संचालक
दि.....

मुद्रक–
पं० बैकुण्ठनाथ भार्गव,
आनन्दसागर प्रेस, गायघाट
बनारस १.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

BHARATIYA VIDYA BHAVAN
Curzon Road, New Delhi-1.

भूमिका

पञ्चतन्त्र का यह काशिक मध्यमपरीक्षा प्रथमखण्ड में पाठ्य कम्बुग्रीव-
यान्त भाग प्रकाशित कर हम विद्वानों एवं छात्रवर्ग के करकमलों में भेंट
रहे हैं।

इसमें परीक्षोपयोगी 'अभिनवराजलक्ष्मी' नामक सुप्रसिद्ध टीका साथ में दी
। इससे परीक्षार्थी छात्रों को अभ्यास करने में बडा सौकर्य होगा।

पञ्चतन्त्र का जीर्णोद्धार

ामहोपाध्याय श्रीविष्णुशर्मा कृत इस 'पञ्चतन्त्र' का भारतवर्ष में ही नहीं
सर्वत्र ही विशेष प्रचार एवं आदर है। फ्रेंच, जर्मन, इटेलियन,
हिन्दी, उर्दू, अरबी, फार्सी, हिब्रू, लेटिन, रसियन आदि सभी भाषाओं
के अनुवाद हुए हैं, और उनका विश्व में बहुत प्रचार भी है।

अतः इसकी उपादेयता और उपकारिता के विषय में विशेष कहने की कोई
ाश्यकता नहीं है। जैसे—यह ग्रन्थ सुन्दर २ कथाओं से, अद्भुत २ उपा-
ानों से बालकों के मन को आकृष्ट करता है, वैसे ही धुरन्धर विद्वानों और
काण्ड राजनीतिज्ञों को भी संसार की उलझी हुई समस्याओं के सुलझाने में,
ानीति के सूक्ष्म तत्त्वों के विशद विवेचन करने में, अनुपम सहायता देकर
ानरूप से उपकृत करता है।

पञ्चतन्त्र की भीषण दुर्दशा।

यद्यपि इस सर्वोपयोगी ग्रन्थ-रत्न के बहुत से संस्करण हुए हैं, परन्तु उनमें
यः अबाध रूप से अशुद्धियों की बहुलता देखने में आती है।

गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज के भू० प्रिन्सिपल एवं संस्कृतपरीक्षा बोर्ड के
यक्ष महामहोपाध्याय पण्डित श्रीगोपीनाथजी कविराज महोदय ने इस ग्रन्थ
हत्त्व को देखकर सभी विषयों की प्रथमा व मध्यमा-परीक्षाओं में इसको
से स्थान दिया है, तब से इसके पठन-पाठन को और भी विशेष
ाहन मिला है। और—'पञ्चतन्त्र' 'हितोपदेश' ले के का खिलवाड़ कर थौव
?, ई कुल कन्था-पुराण हमहन नहीं पढाईल। अलबत्ते दशकुमार लिआब!

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कादम्बरी पढ !, भारतचम्पू देख-तो हम रौआंके पढा सकील। ई कुल तो लडकन केर खिलवाड आय'—इस तरह कह कर पञ्चतन्त्र से पीछा छुड़ानेवालों को भी जब प्रायः अशुद्ध संस्करणों पर से पञ्चतन्त्र पढाना पड़ा, तब तो कठिन समस्या उपस्थित हुई। क्योंकि—पञ्चतन्त्र के पाठों में बहुत ही गड़बड़ थी। तब लगी सटीक पञ्चतन्त्रों की खोज होने। चला विमर्श कि—'किस टीका में क्या अर्थ है'? और 'उन अर्थों में कौन ठीक है'? इत्यादि। परन्तु पाठ तो प्रायः अशुद्ध थे, उनको चतुर टीकाकरों ने केवल बुद्धि व पाण्डित्य के जोर से तोड़-मरोड़ कर किसी तरह लिख-पढ कर पिण्ड छुड़ाया था। जो बिचारे साधारण छात्र थे उनको तो गुरुजी ने थोड़ा जोर से बोलकर, या डाँट-डपट कर, किसी अंट-संट टीका का हवाला देकर, किसी तरह चुप कराके पाठ पढ़ा दिया, पर जो थोड़े विवेचक छात्र थे-वे सदा ही उन पाठों को लेकर इतस्ततः पूछते फिरते थे, पर सन्तोष कदाचित् ही किसी का होता था।

साहित्य के काशीस्थ एक विद्वान् ने अपने छात्रों से स्पष्ट ही कहा था कि 'भाई! एक सटीक पञ्चतन्त्र हमारे लिये लेते आया करो, तो हम तुम्हें पढा दिया करेंगे। नहीं तो तुम अन्यत्र किसी से पढ़ लिया करो। हमें तो 'कादम्बरी' 'काव्यप्रकाश' पढाने से ही अवकाश नहीं मिलता है,-तुम देखते ही हो, क्या करें!' इत्यादि।

इसी प्रकार हमारे एक अन्य मित्र ने भी २-३ स्थल निकालकर हम से कहा था कि-'ऐसे २ बहुत से स्थलों पर विद्यार्थियों को हमने-'किसी देश विशेष में यह प्रसिद्ध है' 'इसका अर्थ किसी बड़े कोश में देख लेना। क्या करें, हमारा तो बड़का कोश मिल नहीं रहा है, मिलेगा तो हम स्वयं भी देखेंगे''—इत्यादि शब्दों से ही किसी तरह शान्त किया है। भाई! पाठ तो ऐसा अण्ड-बण्ड था कि कुछ अक्किल नहीं काम देती थी। अतः आप ही कहिए—इस प्रकार पीछा छुडाने के अतिरिक्त हम और करते भी क्या?'' इत्यादि।

इस प्रकार इस पञ्चतन्त्र की अशुद्धियों से दुर्दशा थी। इसे पढते-पढाते समय अच्छे २ लोगों का हृदय धड़कने लगता था। और उसका कारण केवल पाठों की अशुद्धियाँ थीं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अतः 'श्रीराजस्थान-संस्कृत-कालेज' ने विद्वानों और छात्रों के लाभार्थ यह सस्ता और पूर्वापेक्षया नितान्त शुद्ध संस्करण निकाला है।

इसमें ४००–५०० से ऊपर ही पाठ ठीक किए गए हैं। उसमें से २-४ उदाहरण के रूप में नीचे हम लिखते हैं,—जिन्हें देखकर सहृदय विद्वानों के मुख से सहसा यह निकले विना न रहेगा 'कि-हाँ, हाँ; यही पाठ तो ठीक है! यही तो यहाँ होना चाहिए था' !!।

उदाहरण—

'सुवृत्तोऽपि सुशीलोऽपि यात्यदानादधो घटः।
अथ काणाऽपि कुब्जापि दानादुपरि कर्कटी ॥'

[तन्त्र २ श्लोक ७८]

यह पाठ प्रचलित सभी पुस्तकों में ऐसा ही है। और पञ्जाब के एक सुप्रतिष्ठित टीकाकार ने इसका अर्थ किया है कि–घड़ा जब रहेगा तब पलङ्ग के नीचे ही रहेगा, पर ककड़ी को तो पलङ्ग के ऊपर बैठ कर ही लोग खाते हैं इत्यादि।

कहिए कैसा बढिया अर्थ है ?। क्या इस अर्थसे आप लोगों को सन्तोष होता है ?। यदि नहीं तो सुनिए !- यहाँ यह पाठ ही नहीं है-किन्तु-एक अक्षर बदल दीजिये-'कर्कटी' की जगह 'कर्करी' पढ़िये। (कर्करी=झारी, करुवा, कमण्डलु। जिसे राजपूताना में 'करी' और 'तूतीया' कहते हैं)।

कवि का भाव यह है कि-दान देते समय और जल पिलाते समय भी घड़े से जल नहीं दिया जाता है, और न पिलाया जाता है। किन्तु करुवा (कमण्डलु) से ही जल दिया जाता है। इसी महत्त्व के कारण (काणा=एक छिद्रवाली, कुब्जा–घड़े की अपेक्षा अत्यन्त छोटी=वामन) कर्करी-करुवा घड़े के ऊपर ही रखी जाती है। सभी जगह प्याऊ पौसरा आदि में नीचे घड़ा रख कर उसके ऊपर पानी पीने आदि के लिए करी रखते हैं–यह लोक प्रसिद्ध है। अब आप उस अर्थ से और इस अर्थ से तुलना कीजिए। कहिए वह पाठ ठीक है, या हमारा यह पाठ ठीक है ?।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और भी—

'पूर्णाऽपूर्णे माने परिचितजनवञ्चनं तथा नित्यम् ।
मिथ्याक्रयस्य कथनं प्रकृतिरियं स्यात्किरातानाम्' ॥

[१ तन्त्र श्लो. १७]

कहिए, यहाँ वैश्यों के वर्णन में किरात का क्या प्रसङ्ग है ? । किरात लोग कब से वाणिज्य करने लगे ? । अच्छा अब सुनिए, यहाँ 'किरातानां' इस प्रचलित पाठ की जगह 'किराटानाम्'—यह पाठ है । किराट=वैश्य । इसी का अपभ्रंश 'किराड़'-'किराणा' आदि शब्द 'मारवाड़ी' 'गुजराती' 'महाराष्ट्र' एवं 'बंगाली' भाषाओं में मिलते हैं ।

क्षेमेन्द्र आदि महाकवियों ने भी 'कलाविलास' आदि काव्यों में टकार के अनुप्रास के साथ 'किराट' शब्द का प्रयोग किया है-'किराटोऽटति साटोपं चेलाञ्चितकटीतटः' इत्यादि ।

और भी उदाहरण देखिए—

'क्षीणः स्रवति शशी, रविवृद्धौ वर्द्धयति पाथसां नाथम् । [पृष्ठ ४१५]

कहिए-क्षीण चन्द्रमा का झरना कहीं सुना है ? और रवि की वृद्धि कहीं भी सुनी है ? । यदि नहीं तो यह श्लोक कैसे लगा ? ।

अच्छा देखिये, जरा इसको ऐसे पढ़िये—

'क्षीणः श्रयति शशी रविम् , ऋद्धो वर्द्धयति पाथसां नाथम् ।
अन्ये विपदि सहाया धनिनां, श्रियमनुभवन्त्यन्ये ! ॥'

'चन्द्रमा विपत्ति (क्षय) काल में-अमावास्या के दिन-सूर्य के यहाँ आश्रय पाता है, पर जब उसके समृद्धि के दिन लौटते हैं—जब वह परिपूर्ण होता है, पूर्णिमा को-तो-सूर्य को भूल जाता है--अर्थात् उससे दूर हो जाता है, और समुद्र को ही बढ़ाता[1] है । ठीक ही है, जो लोग विपत्ति काल में धनियों की सहायता करते हैं, उन्हें वे अवसर में याद नहीं रखते !' यह इसका अर्थ है ।

---

१. शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से पूर्णिमा तक चन्द्रमा की वृद्धि के साथ २ समुद्र में भी वृद्धि होती है और पूर्णिमा को चन्द्रमा के परिपूर्ण हो जाने पर समुद्र खूब बढ़ता . उसमें 'ज्वार भाटा' जोर से आता है । यह समुद्र के निकट रहनेवाले सभी जानते हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अब आप ही कहिए—यहाँ कितना उत्तम कवि का भाव है, पर उसकी अशुद्ध पाठों से कैसी दुर्दशा हो रही थी। अस्तु, अब पुराना प्रचलित पाठ ठीक है, या हमारा कल्पित पाठ ठीक है ?, यह तो आप ही स्वयं तुलना कीजिए।

और भी उदाहरण—

'यस्मिन् कुले यः पुरुषः प्रधानः स सर्वयत्नैः परिरक्षणीयः।
तस्मिन् विनष्टे कुलसारभूते न नाभिषङ्गे ह्यरयो वहन्ति'॥

कहिए, इस श्लोक का अर्थ बैठता है ?। यदि नहीं तो हमारा पाठ निकालिए। 'तस्मिन्विनष्टे हि कुलं विनष्टं,न नाभिभङ्गे ह्यरका वहन्ति'। 'रथ के चक्र की नाभि टूट जाय तो क्या पहिए की पंखुडी (खाली डंडे) से रथ चल सकेगा ?। नहीं। इसलिये प्रधान की रक्षा पर ध्यान देना चाहिए'। यह इस श्लोक का भावार्थ है। (अरा एव—अरकाः)।

इसी प्रकार मूल की तरह पञ्चतन्त्र के अर्थांश में भी बहुत जगह टीका-टिप्पणी आदि में मनमानी हुई है। जैसे—'पापर्द्धि' शब्द शिकार का वाचक प्रसिद्ध है। हेमचन्द्रसूरि ने भी अपने कोश में 'पापर्द्धिर्मृगयाऽऽखेटः' यह लिखा है। मारवाड़ में बहेलिये को 'पारधी' कहते भी हैं। और महाराष्ट्र भाषा में भी मृगया को 'पारधी' कहते हैं। पर कुछ लोगों ने पापर्द्धि का 'पापस्य ऋद्धि-वृद्धि कर्त्तुं गत इत्यर्थः' ऐसा अर्थ करके घोर अनर्थ किया है !। कहिए यह अर्थ का अनर्थ नहीं तो क्या है ?।

इसी तरह एक जगह 'चटित' का अर्थ— टूटा हुआ'---किया है,पर उसका अर्थ तो है–'चढा हुआ' और 'हाथ लगा'।

कितना लिखें—इस प्रकार बहुत सी प्रचलित अशुद्धियाँ इस संस्करण में ठीक की गई हैं।

और हमारा यह पञ्चतन्त्र के जीर्णोद्धार[1] का कार्य—विद्वानों को बहुत पसन्द आया है, इसी लिए अत्यल्प समय में ही इसके अनेकानेक संस्करण समाप्त हो गए हैं। यह बड़े हर्ष की बात है।

---

१ आठ सौ वर्ष पहले भी इस पञ्चतन्त्र का बड़े २ विद्वानों की देखरेख में जीर्णोद्धार एवं संशोधन हुआ था, क्योंकि उस समय भी, यह अति अशुद्ध रूप

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसको संशोधन के समय--बहुत स्थलों में 'हार्वर्ट-ओरियन्टल--सिरीज' के पञ्चतन्त्र से भी हमने सहायता ली है।

बड़े ही हर्ष का विषय है—

गुणग्राही विद्वानों ने तथा छात्रों ने हमारे इस पञ्चतन्त्र को इतना अधिक पसन्द किया कि पहिला व दूसरा तीसरा और चतुर्थ संस्करण हाथों हाथ बिक गया। और हमें थोड़े ही समय में इसका यह पञ्चम संस्करण करना पड़ रहा है।

इस प्रकार विद्वानों द्वारा प्रोत्साहित हो हम पूर्वापेक्षया इसको और भी आकर्षक रूप में निकाल रहे हैं, तथा प्रथम संस्करण की अपेक्षा द्वितीय तृतीय एवं चतुर्थ पञ्चम संस्करण में टीका बहुत बढ़ा दी गई है। और बहुत से अवशिष्ट असंलग्न पाठों को इस संस्करण में शुद्ध किया गया है। तथा स्थूलाक्षरों से इसे सुपाठ्य बनाने का पूरा ध्यान रखा गया है।

अतः पूर्वापेक्षया यह संस्करण और भी उपादेय हो गया है। आशा है—छात्र-वर्ग अधिकाधिक इससे लाभ उठाएगा।

में ही उपलब्ध था। जैसे—

श्रीसोममन्त्रिवचनेन विशीर्णवर्णमालोक्य शास्त्रमखिलं खलु पञ्चतन्त्रम्।
श्रीपूर्णभद्रगुरुणा गुरुणाऽऽदरेण संशोधितं नृपतिरीतिविवेचनाय ॥ १ ॥
प्रत्यक्षरं प्रतिपदं प्रतिवाक्यं प्रतिकथं प्रतिश्लोकम्।
श्रीपूर्णभद्रसूरिर्विशोधयामास शास्त्रमिदम् ॥ २ ॥
'प्रत्यन्तरं न पुनरस्त्यमुना क्रमेण कुत्रापि किञ्चन जगत्यपि'–निश्चयो मे।
किन्त्वाद्यसत्कविपदाऽक्षतबीजमुष्टिः सिक्ता मया मतिजलेन जगाम वृद्धिम् ।३।
शरबाणतरणिवर्षे (१२५५ वै०) रविकरवदिफाल्गुने तृतीयायाम्।
जीर्णोद्धार इवासौ प्रतिष्ठितोऽधितिष्ठितो विबुधैः ॥ ४ ॥

श्रीराजस्थान संस्कृत-कालेज
मीरघाट, काशी।
२३--८--५०

निवेदक—
श्रीगुरुप्रसादशास्त्री।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

अथ

पञ्चतन्त्रकम् ।

श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिविरचितया—

अभिनवराजलक्ष्मीटीकया विराजितम्

❀ अथ कथामुखम् ❀

ब्रह्मा रुद्रः कुमारो हरिवरुणयमा वह्निरिन्द्रः कुबेर-
श्चन्द्रादित्यौ सरस्वत्युदधियुगनगा वायुरुर्वी भुजङ्गाः ।
सिद्धा नद्योऽश्विनौ श्रीर्दितिरदितिसुता मातरश्चण्डिकाद्या,
वेदास्तीर्थानि यज्ञा गणवसुमुनयः पान्तु नित्यं ग्रहाश्च ॥१॥

❀ अथ अभिनव-राजलक्ष्मीः ❀

वन्देऽनवद्यसद्धृद्यविद्योद्योतितदिङ्मुखान् ।
मरुमण्डलमार्त्तण्डस्नेहिरामाभिधान् गुरून् ॥ १ ॥

कथायाः—मुखं=प्रारम्भः । भूमिकेति यावत् । 'मुखमुपाये प्रारम्भे श्रेष्ठे निस्सरणाऽऽस्ययो'रिति हैमः ।

ब्रह्मेति । कुमारः=स्कन्दः । हरिः=विष्णुः । सरस्वती=शारदा । समुद्राः=चत्वारः सागराः । युगाः=सत्य-त्रेता-द्वापर-कलियुगाः । उर्वी=पृथ्वी । भुजङ्गाः=सर्पाः । नद्यः=गङ्गाद्याः सरितः । दितिः=दैत्यमाता । अदितिसुताः=देवाः । मातरः=चण्डिकाद्याः । 'ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा । वाराही च तथे-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मनवे वाचस्पतये शुक्राय पराशराय ससुताय ।
चाणक्याय च विदुषे नमोऽस्तु नयशास्त्रकर्तृभ्यः ॥ २ ॥
सकलाऽर्थशास्त्रसारं जगति समालोक्य विष्णुशर्मेदम् ।
तन्त्रैः पञ्चभिरेतच्चकार सुमनोहरं शास्त्रम् ॥ ३ ॥

तद्यथाऽनुश्रूयते—अस्ति दाक्षिणात्ये जनपदे महिलारोप्यं नाम नगरम् । तत्र सकलाऽर्थिकल्पद्रुमः, प्रवर-मुकुटमणि-मरीचिमञ्जरी-

---

न्द्राणी चामुण्डा सप्त मातरः' ॥ इति । गणाः=गणचारिणो देवा—आदित्याद्याः, शिवगणाश्च । वसवः=अष्टौ वसवः । मुनयः=देवब्रह्मर्षयोऽन्ये च सिद्धा मुनयः । नव ग्रहाश्च=आदित्याद्याः—संसारमस्मानध्येतृपाठकांश्च, नित्यं=सर्वदा, पान्तु=रक्षन्तु ॥ १ ॥

मनवे=राजर्षये मनुस्मृतिकर्त्रे । वाचस्पतये=बृहस्पतये । ससुताय पराशराय=पुत्रयुताय पराशराय । (पराशरसुतः=व्यासः)। चाणक्याय=कौटल्याय । एभ्यो नयशास्त्रकर्तृभ्यः=नीतिशास्त्रप्रणेतृभ्यः—नमः=नमोऽस्तु ॥ २ ॥

सकलेति । सकलानां=सर्वेषां श्रेष्ठानाम् । अर्थशास्त्राणां=नीतिशास्त्राणाम् । इदं=वक्ष्यमाणं । सारं=तत्त्वं । जगति=संसारे । समालोक्य=अनुभूय, अधिगत्य च । सुमनोहरं=बालादिमनोहारि । एतत्=पञ्चतन्त्राख्यं । शास्त्रं=नीतिशास्त्रं । पञ्चभिस्तन्त्रैः=प्रकरणैः । चक्रे । सकलनीतितत्त्वमत्र यथावदनुभूतं लोके, परम्पराप्राप्तं च बालोपकृतये निरूपितमित्याशयः ॥ ३ ॥

तत्=पञ्चतन्त्राख्यं शास्त्रम् । यथाऽनुश्रूयते=यथा कर्णाकर्णिकया श्रूयते । यथा च प्रचलति गुरुवृद्धपरम्परया । 'तथा कथयामः' इति, 'तथोपदिशाम' इति वा शेषः । अथ वृद्धपरम्पराऽनुश्रुतां कथां कथयाम इति भावः ।

यद्वा—तत्=वक्ष्यमाणं पञ्चतन्त्रवर्णितं कथाजातं, यथा=येन प्रकारेण जगति प्रसिद्धं । 'तथोपदिशामः' इति शेषः । 'अनुश्रूयते=कर्णाकर्णिकया श्रूयते—यत्—दाक्षिणात्ये जनपदे=मण्डले, महिलारोप्यं नाम नगरमस्ती' त्यन्वयः ।

तत्र=नगरे । सकलानाम्—अर्थिनां=याचकानां—कल्पद्रुम इव—सकलार्थिकल्पद्रुमः=अर्थिसार्थमनारथानां पूरकः । प्रवराणां=श्रेष्ठानां राज्ञां, अथवा प्रवराः=श्रेष्ठा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चर्चित-चरणयुगलः, सकल-कलापारङ्गतोऽमरशक्तिर्नाम राजा बभूव।

तस्य पुत्राः परमदुर्मेधसो—बहुशक्ति-रुग्रशक्ति-रनन्तशक्ति-श्चेति नामानो बभूवुः।

अथ राजा ताञ्शास्त्रविमुखानालोक्य सचिवानाहूय प्रोवाच-'भो! ज्ञातमेतद्भवद्भिर्यन्ममैते पुत्राः शास्त्रविमुखा, विवेकरहिताश्च। तदेतान्पश्यतो मे महदपि राज्यं न सौख्यमावहति।

अथवा साध्विदमुच्यते—

अजात-मृत-मूर्खेभ्यो मृता-ऽजातौ सुतौ वरम्।
यतस्तौ स्वल्पदुःखाय, यावज्जीवं जडो दहेत्॥ ४॥
वरं गर्भस्रावो, वरमृतुषु नैवाऽभिगमनं,
वरं जातः प्रेतो, वरमपि च कन्यैव जनिता।
वरं वन्ध्या भार्या, वरमपि च गर्भेषु वसति-
र्न चाऽविद्वान् रूपद्रविणगुणयुक्तोऽपि तनयः॥५॥

वै ये मुकुटमणयः=किरीटरत्नानि, तेषां मरीचयः=किरणा, एव ता मञ्जर्यः, ताभिश्चर्चितं=रञ्जितं-पूजितं-चरणयोर्युगलं यस्य सः। सकलराजमान्य इत्यर्थः। सकलानां—कलानां=विद्यानां, पराङ्गतः=तत्त्वदर्शी। तस्य=अमरशक्तिभूपतेः। दुष्टा मेधा-बुद्धिः-येषान्ते दुर्मेधसः। 'नित्यमसिच्प्रजामेधयो'रित्यसिच्। परमाश्च ते दुर्मेधसश्चेति विग्रहः। अतिजडबुद्धयः। उच्छृङ्खलाः। अविनीताश्च।

तान्=त्रीनपि पुत्रान्। सचिवान्=मन्त्रिणः। आहूय=आकार्य। ('बुलाकर')। शास्त्रविमुखाः=विद्याभ्यासपराङ्मुखाः, अत एव विवेकरहिताः=ज्ञानशून्याः। तत्=तस्मात्। सौख्यं=सुखम्। न-आवहति=न ददाति।

अथवा=पक्षान्तरे। साधु=युक्तमेव। इदं=वक्ष्यमाणं। केनापि=विदुषा। (किसी ने ठीक ही कहा है)।

तदेवाह-अजातेति। अजात-मृत-मूर्खेषु=त्रिविधेषु पुत्रेषु-अजातो-मृतश्च पुत्रः किञ्चित्—श्रेष्ठो, न तु मूर्खः, यतोऽजाते मृते च पुत्रे सति स्वल्पं दुःखं, मूर्खस्तु सर्वदा दहति=मनस्तापयति॥ ४॥ गर्भस्य स्रावः=नाशः, वरं=श्रेष्ठः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किं तया क्रियते धेन्वा या न सूते, न दुग्धदा ।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन ? यो न विद्वान्न भक्तिमान् ॥ ६ ॥
वरमिह वा सुतमरणं, मा मूर्खत्वं कुलप्रसूतस्य ।
येन विबुधजनमध्ये जारज इव लज्जते मनुजः ॥ ७ ॥
गुणिगणगणनाऽऽरम्भे न पतति कठिनी ससम्भ्रमा यस्य ।
तेनाऽम्बा यदि सुतिनी वद वन्ध्या कीदृशी भवति ? ॥८॥
तदेतेषां यथा बुद्धिप्रकाशो भवति तथा कोऽप्युपायोऽनुष्ठीयताम् ।

ऋतुकाले पुत्रार्थं भार्यायाः सविधेऽगमनं वा, वरं=मनाक्श्रेष्ठं । जातोपि सद्यो मृतश्चेत् , मृत एव वा जातश्चेत्-तदपि वरं । 'देवाद्वृते वरः श्रेष्ठे त्रिषु क्लीबं मनाक् प्रिये' इति कोशः । यद्वा-कन्यैव जाता, न पुत्रस्तदपि वरं । यद्वा-भार्या=पत्नी, वन्ध्या=पुत्रादिजननाऽसमर्था, तदपि वरं । यद्वा—गर्भे एव बालस्तिष्ठति, रोगादिना न खलु गर्भाद्बहिर्भवति—तदपि, वरं=श्रेष्ठं, परन्तु रूप-धनादि-सौभाग्ययुक्तोऽपि-मूर्खः पुत्रो—न वरं=न युक्तः ॥ ५ ॥

यथा—दुग्धवत्सादिफलरहितया धेन्वा=गवा, न किमपि क्रियते, तथा—मूर्खेण, अविनीतेन च पुत्रेण किम् ? । न किमपि फलमित्यर्थः । या न सूते=न बलवद्वत्सान् जनयति । न दुग्धदा=नैव च प्रभूतं दुग्धं ददाति ॥ ६ ॥

वरमिति । सुतस्य=पुत्रस्य, मरणमिह=लोके—परं=मनाक् प्रियं, न तु सत्कुलप्रसूतस्यापि पुत्रस्य मूर्खत्वं वरम् । येन=मूर्खत्वेन, विबुध-नमध्ये=पण्डित-समाजे, जारज इव=व्यभिचारजनित इव—पुमान् लज्जते=जिह्रेति । 'जारस्तूपपतिः समौ' इत्यमरः । यद्वा-येन मूर्खपुत्रेण, जारजे=जारजाते पुत्रे इव, मनुजः=पुमान् । तत्पितेति यावत् । लज्जते इत्यर्थः ॥ ७ ।

गुणीति । गुणिनां गणाः, तेषां गणना, तस्या आरम्भे=विद्वज्जनगणनावसरे । कठिनी=खटिका ['खटिया']। यस्य-'नामन्युच्चरिते स्मृते वे' ति शेषः, ससम्भ्रमा=सत्वरा । न पतति=लेखनपट्टे न प्रचलति । तेन=पुत्रेण । यदि-तस्य, अम्बा । सुतिनी=पुत्रवतीति भण्य ।, तर्हि वन्ध्या कीदृशी भवति ? इति—वद=कथय । मूर्खपुत्रजननी वन्ध्यैवेत्याशयः । 'सुसम्भ्रमाद्यस्ये'ति पाठान्तरम् ॥ ८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अत्र च मद्दत्तां वृत्तिं भुञ्जानानां पण्डितानां पञ्चशती (५००) तिष्ठति। ततो यथा मम मनोरथाः सिद्धिं यान्ति तथाऽनुष्ठीयता'मिति।

तत्रैकः प्रोवाच—'देव! द्वादशभिर्वर्षैर्व्याकरणं श्रूयते, ततो धर्मशास्त्राणि—मन्वादीनि, अर्थशास्त्राणि—चाणक्यादीनि, कामशास्त्राणि—वात्स्यायनादीनि। एवं च ततो धर्मार्थकामशास्त्राणि ज्ञायन्ते, ततः प्रतिबोधनं भवति'।

अथ तन्मध्यतः सुमतिर्नाम सचिवः प्राह—'अशाश्वतोऽयं जीवितव्यविषयः, प्रभूतकालज्ञेयानि शब्दशास्त्राणि, तत्सङ्क्षेपमात्रं शास्त्रं किञ्चिदेतेषां प्रबोधनार्थं चिन्त्यता'मिति।

तत्=तस्मात्। एतेषां=मत्पुत्राणां। बुद्धिप्रकाशः=बुद्धिवर्धनम्। अत्र=मदीयराजधान्यां, वृत्तिं=जीविकाम्, वर्षाशनञ्च। भुञ्जानानाम्=उपभुञ्जानानाम्। मम मनोरथाः='मत्पुत्राः पठन्त्वि'ति ममाभिलाषः। सिद्धिं=साफल्यम्।

तत्र=मन्त्रिषु। एकः=कश्चन मन्त्री। देव!=राजन्। व्याकरणं श्रूयते=व्याकरणशास्त्रं श्रूयते। गुरोः श्रोतुं शक्यते। पठ्यते इति यावत्। 'व्याकरणशास्त्रमध्येतुं शक्यते इति श्रूयते' इत्यर्थो वा। ततः=व्याकरणाध्ययनानन्तरं। धर्मशास्त्रादीनि। 'श्रूयन्ते' इति शेषः। पठ्यन्ते इति तदर्थः। ततः=श्रवणानन्तरं। ज्ञायन्ते=तत्त्वतो ज्ञायन्ते। शास्त्राणि गुरोरधीत्य लोके व्यवहरन्नेव शास्त्रतत्त्वं ज्ञातुं शक्नोति, न पठनमात्रेणेति भावः। ततः=व्यवहारादिना शास्त्रतत्त्वज्ञानेन। प्रतिबोधनं=बुद्धिवैशद्यं। भवति=जायते। एवञ्चेत्थं भूयान् कालोऽपेक्ष्यते शास्त्रतत्त्वज्ञाने,—इमे च प्ररूढवयसो राजपुत्राः सञ्जाता इति कथमेतेषां बुद्धिप्रकाशः शक्यते कर्तुम्—इत्याशयः।

अथ=एतद्वाक्यश्रवणानन्तरम्। तन्मध्यतः=मन्त्रिगणमध्यतः। सचिवः=मन्त्री। अशाश्वतः=क्षणभङ्गुरः। जीवितव्यविषयः=जीवनकालः। प्रभूतेन=भूयसा। कालेन=समयेन। ज्ञेयानि=ज्ञातुं शक्यानि। शब्दशास्त्राणि=व्याकरणादिशास्त्राणि। सङ्क्षेपमात्रं=सङ्क्षिप्तमेव। एतेषां=राजपुत्राणां चिन्त्यताम्=अनुसन्धीयताम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उक्तञ्च यतः—

अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रं,
स्वल्पं तथाऽऽयुर्बहवश्च विघ्नाः ।
सारन्ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु,
हंसैर्यथा क्षीरमिवाऽम्बुमध्यात् ॥ ९ ॥

तदत्रास्ति विष्णुशर्मा नाम ब्राह्मणः सकलशास्त्रपारङ्गमः, छात्रसंसदि लब्धकीर्तिः, तस्मै समर्पयत्वेतान् । नूनं (स) द्राक्प्रबुद्धान्करिष्यती'ति ।

स राजा तदाकर्ण्य विष्णुशर्माणमाहूय प्रोवाच–'भो भगवन् ! मदनुग्रहार्थमेतानर्थशास्त्रं प्रति द्राग्यथाऽनन्यसदृशान्विदधासि तथा कुरु । तदाऽहं त्वां शासनशतेन योजयिष्यामि' [इति] ।

अथ विष्णुशर्मा तं राजानमूचे–'देव ! श्रूयतां मे तथ्यवचनं, नाऽहं विद्याविक्रयं शासनशतेनाऽपि करोमि । पुनरेतांस्तव पुत्रान्मासषट्केन यदि नीतिशास्त्रज्ञान्न करोमि ततः स्वनामत्यागं करोमि ।

किं बहुना ! श्रूयतां ममैष सिंहनादः–नाहमर्थलिप्सुर्ब्रवीमि, ममाऽ-

---

शब्दशास्त्रं=व्याकरणादि । अनन्तं पारं यस्य तत् अनन्तपारम्=अतिगहनमनन्तञ्च । स्वल्पम्=परिमितञ्च । आयुः=जीवितकालः । तत्रापि परिमितेऽप्यायुषि । बहवो विघ्नाः सन्ति । ततः=तस्मात् । फल्गु=निःसारम् । अपास्य=विहाय । सारं=तत्त्वं, ग्राह्यं । यथा हंसैर्जलमिलिते क्षीरे–(जलं विहाय) दुग्धं–गृह्यते तद्वत् ॥९॥

छात्राणां संसत्=परिषत्, तस्यां–छात्रसंसदि=विद्यार्थिमण्डले । द्राक्=झटिति । प्रबुद्धान्=सुबोधान् । तत्=मन्त्रिवाक्यम् । आकर्ण्य=श्रुत्वा । अर्थशास्त्रं प्रति=नीतिशास्त्रे, राजशास्त्रे च । अनन्यसदृशान्=अनुपमान् । शासनशतेन=ग्रामशताधिकारेण । ग्रामशतं तुभ्यं दास्यामीति यावत् । (सौ गांव आपको इनाम दूंगा) ।

देव !=राजन् । तथ्यवचनं=सत्यं वाक्यम् । पुनः=किन्तु । मासषट्केन=षड्भिर्मासैरेव ।

स्वनामत्यागं=यशसः, पाण्डित्यगर्वस्य, स्वनाम्नश्च त्यागम् । एषः=वक्ष्यमाणः, क्रियमाणश्च । सिंहगर्जितमिव मदुक्तं वादिगजेन्द्रवारणं सुस्पष्टं गभीरं वाक्यम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शीतिवर्षस्य व्यावृत्तसर्वेन्द्रियाऽर्थस्य न किञ्चिदर्थेन प्रयोजनम्। त्वत्प्रार्थनासिद्ध्यर्थं सरस्वतीविनोदं करिष्यामि। तल्लिख्यतामद्यतनो दिवसः—यद्यहं षण्मासाभ्यन्तरे तव पुत्रान्नयशास्त्रं प्रत्यनन्यसदृशान्न करिष्यामि, ततो [1]'नाऽर्हति देवो देवमार्गं सन्दर्शयितुम्' (इति)।

अथाऽसौ राजा तां ब्राह्मणस्याऽसंभाव्यां प्रतिज्ञां श्रुत्वा ससचिवः प्रहृष्टो विस्मयाऽन्वितस्तस्मै सादरं तान्कुमारान्समर्प्य परां निर्वृतिमाजगाम।

विष्णुशर्मणाऽपि—तानादाय तदर्थं मित्रभेद-मित्रप्राप्ति-काकोलूकीय-लब्धप्रणाशा-ऽपरीक्षितकारकाणि चेति पञ्च तन्त्राणि रचयित्वा पाठितास्ते राजपुत्राः।

तेऽपि तान्यधीत्य मासषट्केन यथोक्ताः संवृत्ताः।

ततः प्रभृत्येतत्पञ्चतन्त्रकं[2] नाम नीतिशास्त्रं बालाऽवबोधनार्थं

श्रूयतां=भवताऽऽकर्ण्यताम्। स्ववाक्ये विश्वासार्थं स्वस्मिन्नाप्तत्वं सूचयति—नाहमिति। कुत एतदत आह—ममेति। व्यावृत्ताः सर्वे इन्द्रियाणामर्था यस्मात् तस्य व्यावृत्तसर्वेन्द्रियार्थस्य=विषयपराङ्मुखस्य। अर्थेन=धनादिना। त्वत्प्रार्थनासिद्ध्यर्थं=पालकस्य सतो भवतोऽभीष्टसिद्ध्यर्थमेव। सरस्वतीविनोदं=विद्याशक्तिप्रदर्शनकौतुकमात्रं। सिंहनादोपमं वाक्यमिदानीमाह—यदीति। नयशास्त्रं प्रति=नीतिशास्त्रं प्रति। अनन्यसदृशान्=अनुपमान्। 'देवः=धर्मराजः। देवमार्गं=सद्गतिं। सन्दर्शयितुं=प्रदातुम्। असम्भाव्याम्=अतर्क्याम्, अद्भुताञ्च। पराम्=अत्यन्ताम्। निर्वृतिं=सुखम्।

तदर्थं=कुमारशिक्षाणार्थम्। तानि=पञ्चतन्त्राणि। यथोक्ताः=नीतिशास्त्रपारङ्गताः। संवृत्ताः=जाताः।

---

१ 'ततोऽर्हति मे देवो देवमार्गं' मित्येवं लिखितपुस्तके पाठः। तत्र—देवः=भवान् राजा, मे=मह्यं, देवमार्गं=यमराजराजधानीमार्गं, सन्दर्शयितुमर्हति=प्रतिज्ञाभङ्गे मृत्युदण्डं, निर्वासनदण्डं वा दातुमर्हतीत्यर्थः। शोभनश्चायं पाठ इति गौडाः।

२ पञ्च तन्त्राणि यस्मिन् प्रकरणे तत् पञ्चतन्त्रम्। तदेव—पञ्चतन्त्रकम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भूतले प्रवृत्तम् । किं बहुना—

अधीते य इदं नित्यं नीतिशास्त्रं शृणोति च ।
न पराभवमाप्नोति शक्रादपि कदाचन ॥ १० ॥

❀ इति कथामुखम् ❀

अथ पञ्चतन्त्रके मित्रभेदः ।

अथाऽतः प्रारभ्यते मित्रभेदो नाम प्रथमं तन्त्रम् । यस्याऽयमादिमः श्लोकः—

'वर्द्धमानो महान्स्नेहः [1]सिंहगोवृषयोर्वने ।
पिशुनेनाऽतिलुब्धेन जम्बुकेन विनाशितः ॥ १ ॥

तद्यथाऽनुश्रूयते-अस्ति दाक्षिणात्ये जनपदे महिलारोप्यं नाम नगरम् । तत्र धर्मोपार्जितभूरिविभवो वर्द्धमानको नाम वणिक्पुत्रो बभूव ।

तस्य कदाचिद्रात्रौ शय्याऽऽरूढस्य चिन्ता समुत्पन्ना, यत्-'प्रभूतेऽपि वित्तेऽर्थोपायाश्चिन्तनीयाः, कर्तव्याश्चे'ति ।

भूतले=जगति । प्रवृत्तं=प्रचलितम् । किमिति । एतत्पञ्चतन्त्रकप्रशंसायां बहुनोक्तेन—किं=न किमपि फलमित्यर्थः । सङ्क्षिप्यैव किञ्चिद्वदामीत्यर्थः । शक्रात्=इन्द्रात् ॥ १० ॥ इति कथामुखम्=भूमिका । उपोद्घातः ।

मित्रयोर्मित्राणाञ्च भेदः-मित्रभेदः । उपचारात्प्रकरणे प्रयोगः । सिंहश्च गोवृषश्च-सिंहगोवृषौ, तयोः । गोवृषः-श्रेष्ठो बलीवर्दः । पिशुनेन=सूचकेन खलेन च । जम्बुकेन=शृगालेन (गीदड़, सियार) ॥ १ ॥

धर्मेणोपार्जितो भूरिविभवो येनासौ-धर्मोपार्जितभूरिविभवः=सदुपायलब्ध-धनराशिः । वणिक्पुत्रः=वैश्यः । शय्यारूढस्य=पर्यङ्कविश्रान्तस्य । चिन्तामेवाह-

---

१ 'सिंहवृषभयोर्वने' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यत उक्तञ्च--

न हि तद्विद्यते किञ्चिद्यदर्थेन न सिद्ध्यति ।
यत्नेन मतिमांस्तस्मादर्थमेकं प्रसाधयेत् ॥ २ ॥
यस्याऽर्थास्तस्य मित्राणि, यस्याऽर्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्याऽर्थाः स पुमाँल्लोके, यस्याऽर्थाः स च पण्डितः ॥ ३ ॥
न सा विद्या न तद्दानं न तच्छिल्पं न सा कला ।
न तत्स्थैर्यं हि धनिनां याचकैर्यन्न गीयते ॥ ४ ॥
इह लोके हि धनिनां परोऽपि सुजनायते ।
स्वजनोऽपि दरिद्राणां सर्वदा दुर्जनायते ॥ ५ ॥
[1]अर्थेभ्योऽतिप्रवृद्धेभ्यः संवृत्तेभ्यस्ततस्ततः ।
प्रवर्त्तन्ते क्रियाः सर्वाः पर्वतेभ्य इवाऽऽपगाः ॥ ६ ॥
पूज्यते यदपूज्योऽपि, यदगम्योऽपि गम्यते ।
वन्द्यते यदवन्द्योऽपि, स प्रभावो धनस्य च ॥ ७ ॥
अशनादिन्द्रियाणीव स्युः कार्याण्यखिलान्यपि ।
एतस्मात्कारणाद्वित्तं सर्वसाधनमुच्यते ॥ ८ ॥
अर्थाऽर्थी जीवलोकोऽयं श्मशानमपि सेवते ।

यदिति । (यत्='कि') । प्रभूते=प्रचुरे । अर्थोपायाः=धनार्जनोपायाः । एकं=केवलं । प्रसाधयेत्=उपार्जयेत् । स्थैर्यं=गाम्भीर्य्यादिकम् । (सुजन इवाचरति-) सुजनायते=आत्मीयभावमवलम्बते । दुर्जनायते=खल इव क्लेशप्रदो भवति ।

प्रवृद्धेभ्यः=वाणिज्यादिना सञ्चितेभ्यः । संवृत्तेभ्यः=तत्तत्कर्मसु यत्नादिषु सम्यग्विनियुक्तेभ्यः । यद्वा-ततस्ततः संवृत्तेभ्यः=नानोपायैरुपलब्धेभ्यः । अत एव-प्रवृद्धेभ्यः=वृद्धिं प्राप्तेभ्य इत्यर्थः । गौडास्तु-ततः संवृत्तेभ्यः=नानामार्गैर्व्यय-मुपगच्छद्भ्य इत्यर्थमाहुः । आपगाः=नद्यः । अशनात्=भोजनात् । अर्थार्थी=

---

१ 'अर्थेभ्यो हि' पा० । 'अर्थेभ्योऽपि' मुद्रितः पाठः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्यक्त्वा जनयितारं स्वं निःस्वं गच्छति दूरतः ॥ ९ ॥
गतवयसामपि पुंसां येषामर्था भवन्ति ते तरुणाः ।
अर्थेन तु ये हीना वृद्धास्ते यौवनेऽपि स्युः ॥ १० ॥

स चाऽर्थः पुरुषाणां षड्भिरुपायैर्भवति–भिक्षया[1], नृपसेवया[2], कृषिकर्मणा[3], विद्योपार्जनेन[4], व्यवहारेण[5], वणिक्कर्मणा[6] वा । सर्वेषामपि तेषां वाणिज्येनाऽतिरस्कृतोऽर्थलाभः स्यात् ।

उक्तञ्च यतः—

[7]हता भिक्षा भेकैर्वितरति नृपो नोचितमहो !
कृषिः क्लिष्टा, विद्या गुरुविनयवृत्त्याऽतिविषमा ।
कुसीदाद्दारिद्र्यं परकरगतग्रन्थिशमना–
न्नमन्ये वाणिज्यात्किमपि परमं वर्त्तमिह ॥ ११ ॥

धनार्थी । धनमभिवाञ्छन् । जीवलोकः=प्राणिसङ्घः । निःस्वं=निर्धनं । जनयितारं=पितरमपि । गतवयसां=वृद्धानाम् । दरिद्रास्तु यौवनेऽपि वृद्धाः स्युरित्यन्वयः ॥ १० ॥

व्यवहारः=कुसीदार्थं धनादिदानम् । वणिक्कर्मणा=देशान्तरादितो वस्तून्यानीय देशान्तरे विक्रयादिना । तेषाम्=पूर्वोक्तोपायानां मध्ये । अतिरस्कृतः=श्रेष्ठः, अनुपहतश्च ।

हतेति । भेकैः=क्षुद्रैः । पाषण्डिभिः । 'भेको मण्डूकमेघयोः । कातरे त्रिषु' इति कोशः । हता=नाशिता । कपटभिक्षुकाणामाधिक्यात्साधूनामपि भिक्षूणां यथेच्छं धनलाभो न भवतीत्यर्थः । उचितं=यथेप्सितं, न वितरति=न ददाति । गुरुषु विनयः, तेन या वृत्तिः=वर्त्तनं, तया विषमा=कठिना । गुरुकुलवासक्लेशबहुलेति यावत् । कुसीदं=धनवृद्धिः [ब्याज । 'सूद'] । परेषां करेषु गतो यो

---

१ 'हता भिक्षाऽनेकै'रिति मुद्रितेषु पाठः । 'हता भिक्षा ध्वाङ्क्षैर्विचलति नृपाणामपि मनः' इति लिखिते पाठान्तरम् । तत्र–ध्वाङ्क्षाः=भिक्षुकाः । 'ध्वाङ्क्षः काके बकेऽर्थिनि' इति हैमात् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उपायानाञ्च सर्वेषामुपायः पण्यसङ्ग्रहः ।
धनार्थं शस्यते ह्येकस्तदन्यः संशयात्मकः ॥१२॥

तच्च वाणिज्यं सप्तविधमर्थागमाय स्यात् । तद्यथा—(१) गान्धिकव्यवहारः, (२) निक्षेपप्रवेशः, (३) गौष्ठिककर्म, (४) परिचितग्राहकाऽऽगमः (५) मिथ्याक्रयकथनं, (६) कूटतुलामानम्, (७) देशान्तराद्भाण्डानयनञ्चेति ।

उक्तञ्च—

[1]पण्यानां गान्धिकं पण्यं, किमन्यै. काञ्चनादिभिः ।
यत्रैकेन च यत्क्रीतं तच्छतेन प्रदीयते ॥ १३ ॥

ग्रन्थिः=मूलधनं, तस्य शमनं=विनाशः, तस्मात् । अन्यहस्तगतस्य धनस्य प्रायो नष्टप्रायतया तस्य दुर्लभत्वादित्याशयः । वर्त्तनं=जीवनोपायं, न मन्ये=न श्रेष्ठं मन्ये ॥

पण्यानां=विक्रेयवस्तूनां, संग्रहः=सञ्चयः । तदन्यः=कुसीदादिः ॥ १२ ॥

अर्थागमाय=धनलाभाय । गन्धः पण्यमस्य-गान्धिकः, तस्य व्यवहार=व्यवसायः । धातुरसौषधसुगन्धद्रव्यादिविक्रय इति यावत् । निक्षेपप्रवेशः—कुसीदादिलोभेन परैर्दत्तानां धनानां स्वनिकटे स्थापनं । ['धरोहर रखना' 'दूसरे के रुपए जमा करना' 'आभूषण आदि रखकर रुपए ऋण देना' आदि] । गोष्ठे नियुक्तो गौष्ठिकः, तस्य कर्म । राजभाण्डागाराधिकारादिना—['भण्डारी' 'मोदी' 'बोहरा'], गवाध्यक्षतया वा धनागमः । परिचितानां=चिरविश्वस्तानां । ग्राहकाणां=क्रेतॄणाम् । आगमः=निरन्तरं समागमः । ["नामी बनिया"] । मिथ्याक्रयकथनं=अल्पमूल्यस्य रत्नादेर्मिथ्यैव महार्घत्वख्यापनं, तथा विक्रयश्च । केचित्तु—मिथ्यैव क्रयार्थं ग्राहकप्रोत्साहनं, 'क्रयणीयमिदं शीघ्रं महर्घं भविष्यती'त्येवमित्याहुः । ('शीघ्र खरीद लीजिए, अन्यथा यह महँगा हो जायगा इत्यादि) ।

सप्तविधमर्थोपायं क्रमशः पृथक्पृथक्स्तौति-पण्यानामिति । कूटं=कपटघटितं तुलामानं—तुलामानसाधनादिकं । मानं='बाट' 'बटखरा' इति लोके । ['डण्डी मारना' 'पासंग' 'कम बटखरा रखना'] । देशान्तरात्=द्वीपान्तरा-

१ म्रियताम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निक्षेपे पतिते हर्म्ये श्रेष्ठी स्तौति स्वदेवताम् ।
निक्षेपी म्रियते[1],-तुभ्यं प्रदास्याम्युपयाचितम् ॥ १४ ॥
गौष्ठिककर्मनियुक्तः श्रेष्ठी चिन्तयति चेतसा हृष्टः ।
'वसुधा वसुसंपूर्णा मयाऽद्य लब्धा, किमन्येन' ॥ १५ ॥
परिचितमागच्छन्तं ग्राहकमुत्कण्ठया विलोक्याऽसौ ।
हृष्यति तद्धनलुब्धो यद्वत्पुत्रेण जातेन ॥ १६ ॥

अन्यच्च—

पूर्णाऽपूर्णैर्मानैः[2] परिचितजनवञ्चनं, तथा नित्यम् ।
मिथ्याक्रयस्य कथनं, प्रकृतिरियं स्यात्किराटानाम् ॥ १७ ॥

दितः, भाण्डानयनं=विक्रेयद्रव्यानयनम् । [बाहर से माल लाना, मंगाना] ।

पण्यानां = विक्रेयद्रव्याणां मध्ये, गान्धिकं=सुगन्धिद्रव्यमौषधादिकञ्च ['इत्र' आदि] पण्यं । श्रेष्ठमिति शेषः । यत्र=गान्धिकव्यवहारे, एकेन=रूप्यकादिना, यत्=वस्तु, क्रीतमानीतञ्च, तत् शतेन=शतरूप्यकैः । प्रदीयते='ग्राहकेभ्य' इति शेषः ॥ १३ ॥

निक्षेपे=वृद्ध्यर्थं परैर्निक्षिप्ते धने । हर्म्ये=स्वभवने । पतिते=आगते सति । श्रेष्ठी=धनी वणिक् [सेठ] । स्वदेवतां=स्वेष्टदेवताम् । स्तौति=उपयाचते । तदेवाह–निक्षेपी=धनस्थापकः, म्रियते [चेत्] तुभ्यं=देवतायै, उपयाचितम्= उपहारं, ['भेंट' 'परसाद' 'शीरनी' 'भोग'] ॥ १४ ॥

अद्य=गौष्ठिककर्मणि नियुक्तेन मया । वसुधा=पृथिवी । वसुसम्पूर्णा=धान्य-धनपूर्णा । लब्धा=प्राप्ता । अन्येन=इतोऽन्येन, किं=न किमपि प्रयोजनं । नातोऽधिकं वाञ्छामि, सिद्धो मे हन्त ! मनोरथ इत्याशयः । [गौष्ठिककर्म=राजभण्डार की रखवाली, राजभाण्डार में अनाज इकट्ठा करना । खजाने की रक्षा, 'बोहरापन', सेना आदि को रसद देना या तहसीलदारी आदि] । परिचितं ग्राहकमागच्छन्तमुत्कण्ठया विलोक्य असौ–श्रेष्ठी, ['सेठ'] । तस्य=ग्राहकस्य धने, लुब्धः=अभिलाषवान् ॥ १६ ॥

---

१ म्रियताम् । २ 'पूर्णाऽपूर्णे माने' इत्यपि पाठः क्वचित् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्यच्च—

'द्विगुणं त्रिगुणं वित्तं भाण्डक्रयविचक्षणाः ।
प्राप्नुवन्त्युद्यमाल्लोका दूरदेशान्तरं गताः' ॥ १८ ॥

—इत्येवं सम्प्रधार्य मथुरागामीनि भाण्डान्यादाय शुभायां तिथौ गुरुजनाऽनुज्ञातः सुरथाऽधिरूढः प्रस्थितः । तस्य च मङ्गल-वृषभौ सञ्जीवक-नन्दकनामानौ गृहोत्पन्नौ धूर्वोढारौ स्थितौ ।

तयोरेकः सञ्जीवकाऽभिधानो यमुनाकच्छमवतीर्णः सन् पङ्कपूरमासाद्य कलितचरणो युगभङ्गं विधाय निषसाद ।

पूर्णैश्च तैरपूर्णैश्च—पूर्णाऽपूर्णैः=कपटघटितैः, मानैः=तुलामानसाधनादिभिः । ['तराजू', 'बाट' 'बटखरा'] । परिचितजनानां=विश्वस्तग्राहकाणां । वञ्चनं=लुण्ठनम् । तथा=किञ्च, क्रयस्य=मूल्यस्य, मिथ्याकथनं=मिथ्या वर्द्धितैर्मूल्यैः शपथशतैर्ग्राहकाणां वञ्चनं । किराटः=क्षुद्रो वणिक ['किराड'] । यथा—'किराटोऽटति साटोपं चेलाञ्चितकटीतटः' इति महाकविप्रयोगः । क्षेमेन्द्रस्य कलाविलासे द्वितीये सर्गे वैश्यवर्णने च,—

"सत्त्व-प्रशम-तपोभिः सत्त्वधनैः शास्त्रवेदिभिर्विजितः ।
लोभोऽवटं प्रविष्टः कुटिलं हृदयं किराटानाम् ॥" इति । (२सर्गे ३श्लो.) ॥१७॥

भाण्डानां=विक्रेयद्रव्याणां, क्रये=सङ्ग्रहे । विचक्षणाः=कुशलाः । लोकाः=वणिग्जनाः, श्रेष्ठिनः । देशान्तरं गत्वा मूल्यादपि द्विगुणं, चतुर्गुणं वा धनं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ।

इत्येवम्=इत्थं विचार्य देशान्तराद्भाण्डानयनस्य सर्वथा श्रेष्टतां सम्प्रधार्य=निश्चित्य । मथुरागामीनि=मथुरापुर्यां विक्रेयाणि, तदुचितानीति यावत् । भाण्डानि=पण्यानि । 'भाण्डं क्लीबममत्रेऽश्वभूषणे तथा । वणिङ्मूलधनेऽन्ये तु पण्ये केचिदुपस्करे ॥' इति केशवः । धूर्वोढारौ=बलिष्ठौ धुर्यौ बलीवर्दौ । स्थितौ=आस्ताम् । यमुनाकच्छः=कालिन्दीतीरप्रदेशः । 'कच्छो जलाशयप्रान्ते पार्श्वे' इति केशवः । पङ्कपूरं=कर्दमकदम्बम् । ['दलदल'] । कलितचरणः=खण्डितचरणः । युगस्य=स्वस्कन्धावसक्तरथाग्रभागस्य । ['जूआ'] । भङ्गः=त्रोटनं । निषसाद=भूमौ पपात ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ तं तदवस्थमालोक्य वर्द्धमानः परं विषादमगमत्। तदर्थं च स्नेहार्द्रहृदयस्त्रिरात्रं प्रयाणभङ्गमकरोत्।

अथ तं विषण्णमालोक्य सार्थिकैरभिहितं—'भोः श्रेष्ठिन्! किमेवं वृषभस्य कृते सिंह-व्याघ्र-समाकुले बह्वपायेऽस्मिन्वने समस्तसार्थस्त्वया सन्देहे नियोजितः?।

उक्तञ्च-

'न स्वल्पस्य कृते भूरि नाशयेन्मतिमान्नरः।
एतदेवाऽत्र पाण्डित्यं यत्स्वल्पाद्भूरिरक्षणम्' ॥ १९ ॥

अथाऽसौ तदवधार्य सञ्जीवकस्य रक्षापुरुषान्निरूप्याऽशेषसार्थं नीत्वा प्रस्थितः।

अथ रक्षापुरुषा अपि बह्वपायं तद्वनं विदित्वा सञ्जीवकं परित्यज्य पृष्ठतो गत्वाऽन्येद्युस्तं सार्थवाहं मिथ्याऽऽहुः-'स्वामिन्! मृतोऽसौ सञ्जीवकः। अस्माभिस्तु 'सार्थवाहस्याऽभीष्ट' इति मत्वा वह्निना संस्कृतः'—इति।

तच्छ्रुत्वा सार्थवाहः कृतज्ञतया स्नेहाऽऽर्द्रहृदयस्तस्यौर्ध्वदेहिकक्रिया वृषोत्सर्गादिकाः सर्वाश्चकार।

वर्द्धमानः=तन्नामा श्रेष्ठी। विषादं=दुःखम्, प्रयाणभङ्गं=अवस्थानम्। ['पडाव डालना']। तं=श्रेष्ठिनम्। सार्थे भवाः=सार्थिकाः, तै=सहचरैर्वणिग्जनैः। ['साथी']। 'सार्थस्त्वर्थवति त्रिषु। समूहभेदे तु पुमान् प्राणिना' मिति केशवः। बह्वपाये=नानाशङ्कातङ्कप्रदे। सन्देहे=प्राणसङ्कटे। नियोजितः=निक्षिप्तः। स्वल्पात्=स्वल्पमुपेक्ष्य। ल्यब्लोपेऽत्र पञ्चमी ॥ १९ ॥

असौ=वर्द्धमानः। तत्=नियुज्य निश्चित्य। स्वानुयायिजनोक्तम्। अवधार्य=इति निश्चित्य। रक्षापुरुषान्=रक्षकान्। ('सिपाही' 'रखवाले')। निरूप्य=स्थापयित्वा।

पृष्ठतः=अनुपदमेव। (पीछे) अन्येद्युः=अपरदिने (दूसरे दिन)। इति=इत्थं. सार्थवाहस्य=वणिक्सङ्घाधिपतेर्वर्द्धमानस्य भवतः। अभीष्टः=प्रियोऽयं, वृषभः—इति=इत्थं विचार्य। संस्कृतः=दग्धः। और्ध्वदेहिकक्रियाः=पिण्डदाना-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सञ्जीवकोऽप्यायुःशेषतया यमुनासलिलमिश्रैः शिशिरतरवातैराप्यायितशरीरः कथञ्चिदप्युत्थाय यमुनातटमुपपेदे। तत्र मरकतसदृशानि बालतृणाऽग्राणि भक्षयन्कतिपयैरहोभिर्हरवृषभ इव पीनः ककुद्मान्बलवांश्च संवृत्तः। प्रत्यहं वल्मीकशिखराग्राणि शृङ्गाभ्यां विदारयन्गर्जमान आस्ते।

साधु चेदमुच्यते—

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं,
सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः,
कृतप्रयत्नोऽपि गृहे विनश्यति॥ २०॥

अथ कदाचित्पिङ्गलको नाम सिंहः सर्वमृगपरिवृतः पिपासाकुल उदकपानार्थं यमुनातटमवतीर्णः सञ्जीवकस्य गम्भीररावं दूरादेवाऽशृणोत्!

तच्छ्रुत्वाऽतीव व्याकुलहृदयः ससाध्वसमाकारं प्रच्छाद्य वटतले चतुर्मण्डलवस्थानेनाऽवस्थितः। चतुर्मण्डलावस्थानं त्विदम्—सिंहः[1], सिंहानुयायिनः[2], काकरवर्गः[3], किंवृत्ताश्चेति[4]।

अथ तस्य करटक-दमनकनामानौ द्वौ शृगालौ मन्त्रिपुत्रौ भ्रष्टाधिकारौ सदाऽनुयायिनावास्ताम्। तौ च परस्परं मन्त्रयतः।

दिकाः। वृषोत्सर्गः=तत्स्मरणार्थं धर्मवृषभमोचनं। मरकतः=मणिभेदः ['पन्ना']। ककुद्मान्=मांसलः। वल्मीकं=वामलूरः। ('ढूह')। तस्य शिखराणां=शृङ्गाणामग्राणि=अग्रभागान्। सर्वे मृगाः=वन्यजन्तवः। गम्भीरतररावं=बलवद्धुङ्कारध्वनिं। ससाध्वसं=सभयम्। आकारं=निजभावं। चतुर्मण्डलावस्थानेन=मण्डलचतुष्टयाख्यव्यूहं निर्माय, तेनात्मानं गोपयित्वा च। सिंहः—सर्वदेशवनाधिपतिः सिंहानुयायिनः—राज्यतन्त्रधारा अधिकारिणः। काकरवर्गः=मध्यमश्रेणिगताः। साधारणाः प्रजाः। किंवृत्ताः=वनान्तस्थानवासिनः सीमापालाः, उत्तमाऽधममध्यममेदात्त्रिविधा इति प्राचीनटिप्पणीकृतः। 'किंवृत्ताः=वृत्तनिर्देशका गुप्तचरा,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत्र दमनकोऽब्रवीत्-भद्र करटक ! अयं तावदस्मत्स्वामी पिङ्गलक उदकग्रहणार्थं यमुनाकच्छमवतीर्य स्थितः। स किंनिमित्तं पिपासाऽऽकुलोऽपि निवृत्त्य व्यूहरचनां विधाय दौर्मनस्येनाऽभिभूतोऽत्र वटतले स्थितः ?।

करटक आह-भद्र ! किमावयोरनेन व्यापारेण ?।

उक्तञ्च यतः-

अव्यापारेषु व्यापारं यो नरः कर्त्तुमिच्छति।
स एव निधनं याति कीलोत्पाटीव वानरः॥ २१॥

दमनक आह-कथमेतत् ?'। सोऽब्रवीत्—

१ कीलोत्पाटिवानरकथा[1]।

कस्मिंश्चिन्नगराऽभ्याशे केनापि वणिक्पुत्रेण तरुषण्डमध्ये देवताऽऽयतनं कर्तुमारब्धम्। तत्र च ये कर्मकराः स्थपत्यादयस्ते मध्याह्नवेलायामाहारार्थं नगरमध्ये गच्छन्ति।

अथ कदाचिदानुषङ्गिकं वानरयूथमितश्चेतश्च परिभ्रमदागतम्।

तत्रैकस्य कस्यचिच्छिल्पिनोऽर्धस्फाटितोऽर्जुन[2]वृक्षदारुमयः स्तम्भः खदिरकीलकेन मध्यनिहितेन तिष्ठति। एतस्मिन्नन्तरे ते वानरास्तरुशिखरप्रासादशृङ्गदारुपर्यन्तेषु यथेच्छया क्रीडितुमारब्धाः।

देशान्तरादागता वा' इति तु गौडाः। दौर्मनस्येन=विषादेन।

अव्यापारेषु=स्वव्यापारसीमाबहिर्भूतेषु। व्यापारं=रक्षणावेक्षणचेष्टादिकं। निधनं=मरणम्। नगराभ्याशे=नगरसन्निधौ। तरुषण्डमध्ये=ग्रामसीमाकानने। 'षण्डोऽस्त्री वृक्षनिकरे' इति कोशः। देवतायतनं=मन्दिरम्। स्थपत्यादयः=वर्द्धकिप्रभृतयः। ('बढ़ई' 'कारीगर')। आनुषङ्गिकं=यदृच्छया। आगतं=प्राप्तम्। अर्धस्फाटितः=किञ्चिद्विदारितः। (आधा चीरा हुआ)। अर्जुनवृक्षदारुमयः=अर्जुनाख्य-

१ इयं कथाऽश्लीलत्वात्काशिकमध्यमपरीक्षापाठ्यांशतो बहिर्भूता।

२ 'अर्ज्जन'।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एकश्च तेषां प्रत्यासन्नमृत्युश्चापल्यात्तस्मिन्नर्द्धस्फाटितस्तम्भे उपविश्य पाणिभ्यां कीलकं संगृह्य यावदुत्पाटयितुमारेभे, तावत्तस्य स्तम्भमध्यगतवृषणस्य स्वस्थानाच्चलितकीलकेन यद्वृत्तं तत्प्रागेव निवेदितम्। अतोऽहं ब्रवीमि—'अव्यापारेषु' इति।

आवयोर्भक्षितशेष आहारोऽस्त्येव, तत्किमनेन व्यापारेण ?'।

दमनक आह–भवानाहारार्थी केवलमेव, तन्न युक्तम्।

उक्तञ्च—

सुहृदामुपकारकारणाद् द्विषतामप्यपकारकारणात्।
नृपसंश्रय इष्यते बुधैर्जठरं को न बिभर्ति केवलम् ॥२२॥

किञ्च—

यस्मिञ्जीवति जीवन्ति बहवः सोऽत्र जीवतु।
वयांसि किं न कुर्वन्ति चञ्च्वा स्वोदरपूरणम् ? ॥२३॥

तथा च—

यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथितं मनुष्यै-
र्विज्ञानशौर्यविभवाऽऽर्यगुणैः समेतम्।
तन्नाम जीवितमिह प्रवदन्ति तज्ज्ञाः,
काकोऽपि जीवति चिराय; बलिञ्च भुङ्क्ते ॥२४॥

तरुकाष्ठघटितः। (स्तम्भः='धरण' 'खम्भा')। एकः=कश्चिद्वानरः। यद्वृत्तं=यज्जातं। निवेदितं=कथितमेव। मृतः स इत्यर्थः।

भक्षितशेषः=सिंहभुक्तावशिष्टः। अनेन='कुतस्तिष्ठती' त्यादिविचाररूपेण। व्यापारेण=यत्नेन, वितर्केण। आहारार्थी=औदरिकः,—भोजनमात्रपरायणोऽलसः। सुहृदामिति। सुहृदामुपकाराय शत्रूणां निग्रहायैव च पण्डितैः राजसेवा क्रियते, उदरपोषणन्तु को न करोति ?। उदरपोषणं तु सर्वैरेव क्रियते इत्याशयः।

वयांसि=पक्षिणः। प्रथितं=सर्वातिशायि-यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम्। तज्ज्ञाः=लोकव्यवहारविदः पण्डिताः। प्रवदन्ति=स्तुवन्ति। चिराय=बहुकालम्॥२४॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यो नाऽऽत्मना न च परेण च बन्धुवर्गे,
दीने दयां न कुरुते, न च मर्त्यवर्गे ।
किं तस्य जीवितफलं हि मनुष्यलोके ?,
काकोऽपि जीवति चिराय, बलिञ्च भुङ्क्ते ॥२५॥

सुपूरा स्यात्कुनदिका, सुपूरो मूषिकाऽञ्जलिः ।
सुसन्तुष्टः कापुरुषः स्वल्पकेनाऽपि तुष्यति ॥ २६ ॥

किञ्च—

किं तेन जातु जातेन मातुर्यौवनहारिणा ।
आरोहति न यः स्वस्य वंशस्याऽग्रे ध्वजो यथा ॥२७॥

परिवर्त्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ? ।
जातस्तु गण्यते सोऽत्र यः स्फुरेच्च श्रियाऽधिकः ॥२८॥

दीने=विपन्ने, निःस्वे च बन्धुवर्गे, दीने मर्त्यवर्गे च, य आत्मना परेण वा=परद्वारा वा । दयां न कुरुते=नोपकरोति तस्य जीवितस्य=जीवनस्य, किं फलं=न किमपि फलमित्यर्थः । चिराय=चिरकालपर्यन्तम् । बलिं=परदत्तं पिण्डं च भुङ्क्ते । काकवत्तस्य जीवनं वृथैवेत्यर्थः ॥ २५ ॥

कुनदिका=क्षुद्रा नदी । सुपूरा=अल्पेनैव जलेन पूरयितुं शक्या । मूषिकस्य अञ्जलिः=मूषिकेण भोजनसङ्ग्रहाय बद्धोऽञ्जलिः । एवं कापुरुषः=अनुद्यमशीलः पुमान्, स्वल्पेनैव सन्तुष्यतीत्यर्थः ॥ २६ ॥

किन्तेनेति । जातु इति-निश्चये, वाक्यालङ्कारे, प्रसिद्धौ वा । वंशस्य=कुलस्य । ज्ञातिबान्धववर्गस्य, वंशाख्यमहीरुहस्य वा । [वंश='कुल' 'बाँस'] । यथा ध्वजो वंशस्याऽग्रभागे स्फुरति, तथा यो निजवंशस्य मुख्यो न भवति तेन जातेन खलु मातुर्यौवनापहार एव कृतः । एवञ्च व्यर्थं तस्य जन्मेत्याशयः ॥२७॥

स एव 'जात' इति गण्यते यः—श्रिया=सर्वगुणसम्पदा, स्फुरेत्=जगति प्रसिध्येत् ॥ २८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किञ्च—

जातस्य नदीतीरे तस्यापि तृणस्य जन्मसाफल्यम् ।
यत्सलिलमज्जनाऽऽकुलजनहस्ताऽवलम्बनं भवति ॥२९॥

तथा च—

स्तिमितोन्नतसञ्चारा जनसन्तापहारिणः ।
जायन्ते विरला लोके जलदा इव सज्जनाः ॥३०॥
निरतिशयं गरिमाणं तेन जनन्याः स्मरन्ति विद्वांसः ।
यत्कमपि वहति गर्भं महतामपि यो गुरुर्भवति ॥ ३१ ॥
अप्रकटीकृतशक्तिः शक्तोऽपि जनस्तिरस्क्रियां लभते ।
निवसन्नन्तर्दारुणि लङ्घ्यो वह्निर्न तु ज्वलितः ॥ ३२ ॥

करटक—आह, आवां तावदप्रधानौ, तत्किमावयोरनेन व्यापारेण ?।

उक्तञ्च—

अपृष्टोऽत्राऽप्रधानो यो ब्रूते राज्ञः पुरः कुधीः ।
न केवलमसंमानं लभते च विडम्बनम् ॥ ३३ ॥

यत्=तृणं, तदपि जले निमज्जतो जनस्य आलम्बनाय प्रभवति । यश्च पुमान् समर्थः सन्नपि अन्यविपन्नजनोपकारं नाचरति तस्य जन्म वृथैवेति भावः ॥२९॥

स्तिमितेति । सज्जनपक्षे-स्तिमितः=दयार्द्रः । उन्नतः । दानदाक्षिण्यादिगुणगणोपबृंहितः । सञ्चारः=व्यवहार आचरणं च येषामिति ।

मेघपक्षे च–स्तिमितः=जलभरमन्थरः, उन्नतश्च-गगनप्रान्तचुम्बी च । सञ्चारः=प्रसारो, व्याप्तिश्च येषामित्यर्थो बोध्यः ॥ ३० ॥

यः=गर्भः । तदुद्भूतो बाल इति यावत् ॥ ३१ ॥

अप्रकटितेति । शक्तोऽपि यदि अप्रकटितशक्तिश्चेज्जनैस्तिरस्क्रियते एव, यस्तु शक्तिमात्मनोऽकुण्ठितां विस्तारयति स एव तु संमानभाजनमित्याशयः । अरणिकाष्ठादौ हि वह्निर्निवसतीति प्रसिद्धिः ॥ ३२ ॥

केवलमसंमानं=तिरस्कारमेव न । किन्तु-विडम्बनम् उपहासमपि ॥ ३३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा च—

वचस्तत्र प्रयोक्तव्यं यत्रोक्तं लभते फलम् ।
स्थायी भवति चाऽत्यन्तं रागः शुक्लपटे यथा ॥ ३४ ॥

दमनक आह—मा मैवं वद ।

अप्रधानः प्रधानः स्यात्सेवते यदि पार्थिवम् ।
प्रधानोऽप्यप्रधानः स्याद्यदि सेवाविवर्जितः ॥ ३५ ॥

यत उक्तञ्च—

आसन्नमेव नृपतिर्भजते मनुष्यं
विद्याविहीनमकुलीनमसंस्कृतं वा ।
प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च
यत्पार्श्वतो भवति तत्परिवेष्टयन्ति ॥ ३६ ॥

तथा च—

कोपप्रसादवस्तूनि ये विचिन्वन्ति सेवकाः ।
आरोहन्ति शनैः पश्चाद्धुन्वन्तमपि पार्थिवम् ॥ ३ ॥

प्रयोक्तव्यं=वक्तव्यम् । फलं लभते=सफलं भवति । रागः=नीलीमञ्जिष्ठादि-रागः ('रंग') । पार्थिवं=राजानम् ॥ ३५ ॥

असंस्कृतं=दुष्टमविनीतञ्च । यत्=किमपि वस्तु—योग्यमयोग्यं वा तदेव भजन्ति । प्रमदाः=स्त्रियः ॥ ३६ ॥

कोपस्य=क्रोधस्य, यः प्रसादः=दूरीकरणं, तदुपयोगीनि वस्तूनि=धैर्यादिगुणान्, मधुरघासग्रासादींश्च, ये सेवकाः, शूराश्च—विचिन्वन्ति=भजन्ते, सङ्गृह्णन्ति, तेषां पुरतः स्थापयन्ति च । ते पुरुषाः, अश्वसादिनश्च । अश्वादिपक्षे—पश्चात्=पश्चात्पादौ (दुलत्ती मारना), धुन्वन्तं=प्रक्षिपन्तम् । राजपक्षे—तिरस्कुर्वन्तं च-पार्थिवं=राजानं, पर्वतं (लक्षणया) अश्वञ्च । शनैः=कियता कालेन, आरोहन्ति=अधिरोहन्ति । तानावर्जयन्ति, अधिकुर्वते चेत्यर्थः ॥ ३७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विद्यावतां महेच्छानां शिल्पविक्रमशालिनाम् ।
सेवावृत्तिविदां चैव नाऽऽश्रयः पार्थिवं विना ॥ ३८ ॥
ये जात्यादिमहोत्साहान्नरेन्द्रान्नोपयान्ति च ।
तेषामामरणं भिक्षा प्रायश्चित्तं विनिर्मितम् ॥ ३९ ॥
ये च प्राहुर्दुरात्मानो—'दुराराध्या महीभुजः' ।
प्रमादाऽऽलस्यजाड्यानि ख्यापितानि निजानि तैः ॥ ४० ॥
सर्पान्व्याघ्रान्गजान्सिंहान्पश्योपायैर्वशीकृतान् ।
'राजे'ति कियती मात्रा धीमतामप्रमादिनाम् ॥ ४१ ॥
राजानमेव संश्रित्य विद्वान् याति परां गतिम् ।
विना मलयमन्यत्र चन्दनं न प्ररोहति ॥ ४२ ॥
धवलान्यातपत्राणि, वाजिनश्च मनोरमाः ।
सदा मत्ताश्च मातङ्गाः, प्रसन्ने सति भूपतौ ॥ ४३ ॥

करटक आह—'अथ भवान् किं कर्तुमनाः ? ।'

सोऽब्रवीत्—'अद्याऽस्मत्स्वामी पिङ्गलको भीतो, भीतपरिवारश्च वर्त्तते । तदेनं गत्वा भयकारणं विज्ञाय सन्धि-विग्रह-याना-ऽऽसन-संश्रय-द्वैधीभावानामेकतमेन संविधास्ये ।'

विद्यावतां=विदुषां, महेच्छानां=महोदयानां, प्रौढोन्नतिमभिलष्यताञ्च ॥३८॥

जात्यादिमहोत्साहात्=जात्यादिगर्वात्, न उपयान्ति=न सेवन्ते ॥ ३९ ॥

महीभुजः=राजानः, दुराराध्याः=आराधयितुमशक्याः—इति ये दुरात्मानः=कापुरुषाः कथयन्ति । तैः स्वाऽयोग्यतैव प्रकटीक्रियते इत्याशयः ॥ ४० ॥

व्याघ्रादयोऽप्युपायैर्वशीभवन्ति तदा राजेति नाम—कियती मात्रा ? । ("कौन बड़ी चीज है") ॥४१॥ परां=श्रेष्ठां । गतिं=संमानम् ॥४२॥

आतपत्राणि=छत्राणि, वाजिनः=अश्वाः । मातङ्गाः=हस्तिनः । 'लभ्यन्ते'इति शेषः ॥ ४३ ॥

अथेति प्रश्ने । (अच्छा तो) । किङ्कर्तुमनाः ?=किङ्कर्तुमिच्छति ? । सन्धिः=

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करटक आह–'अथ कथं वेत्ति भवान् यद्धयाविष्टोऽयं स्वामी (ति) ? ।' सोऽब्रवीत्–ज्ञेयं किमत्र ? ।

यत उक्तञ्च—

उदीरितोऽर्थः पशुनापि गृह्यते,
हयाश्च नागाश्च वहन्ति चोदिताः ।
अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः,
परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः ॥ ४४ ॥

तथा च—

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च ।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ ४५ ॥

तदद्यैनं भयाकुलं प्राप्य स्वबुद्धिप्रभावेण निर्भयं कृत्वा, वशीकृत्य च, निजां साचिव्यपदवीं समासादयिष्यामि ।

करटक आह—'अनभिज्ञो भवान्सेवाधर्मस्य, तत्कथमेनं वशीकरिष्यति ? ।' सोऽब्रवीत्–कथमहं सेवानभिज्ञः ? । मया हि तातोत्सङ्गे

मित्रता, विग्रहः=युद्धं, यानम्=आक्रमणम्, (चढाई') । आसनं=दुर्गाद्याश्रयणं ('किले बन्दी') । संश्रयः=बलवत्स्वमित्राश्रयणं, द्वैधीभावः=शत्रुसेनादिषूपजापो विरोधोत्पादनञ्च । संविधास्ये=कार्यं करिष्ये ।

उदीरितः=कथितः, अर्थः=विषयः, गृह्यते=ज्ञायते, हयाश्च=अश्वा अपि, नागाश्च=हस्तिनोऽपि, चोदिताः=प्रेरिताः=सन्तः । 'नोदिता' इति पाठस्तु नोचितः । नुद्धातोरनिट्त्वात् । वहन्ति=नयन्ति । पण्डितः-अनुक्तमपि वस्तु-ऊहति=विजानाति, तर्कयति । परस्य यदिङ्गितं=भावः, तस्य ज्ञानमेव फलं यासान्ता बुद्धय इत्यर्थः ॥ ४४ ॥

आकारैः=मुखादिसंस्थानविशेषैः, इङ्गितैः=भावविकारैः, चेष्टया=हस्तपादादिचालनैः, नेत्रवक्त्रविकारैः=मुखभङ्गी–नेत्रारुण्यप्रसादादिभिश्च । मनोगतं=भयादिकम् । लक्ष्यते=ज्ञायते ॥ ४५ ॥ करिष्यसि=त्वं करिष्यति । 'करिष्यती'ति वा पाठः स्यात् ।

तातस्य=पितुः–उत्संगे=क्रोडे ('गोद में') । 'तद्धृदि स्थापित' मिति-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्रीडताऽभ्यागतसाधूनां नीतिशास्त्रं पठतां यच्छ्रुतं सेवा-धर्मस्य सार-भूतं-हृदि स्थापितम् ।

श्रूयताम् । तच्चेदम्—

'सुवर्णपुष्पितां पृथ्वीं विचिन्वन्ति नरास्त्रयः ।
शूरश्च, कृतविद्यश्च, यश्च जानाति सेवितुम् ॥ ४६ ॥
ये सेवकाः[1] प्रभुहिता ग्राह्यवाक्या विशेषतः ।
आश्रयेत्पार्थिवं विद्वांस्तद्द्वारेणैव, नाऽन्यथा ॥ ४७ ॥
यो न वेत्ति गुणान् यस्य न तं सेवेत पण्डितः ।
न हि तस्मात्फलं किञ्चित्सुकृष्टादूषरादिव ॥ ४८ ॥
द्रव्यप्रकृतिहीनोऽपि सेव्यः सेव्यगुणाऽन्वितः ।
भवत्याजीवनं तस्मात्फलं कालान्तरादपि ॥ ४९ ॥
अपि स्थाणुवदासीनः शुष्यन्परिगतः क्षुधा ।

सम्बन्धः । तच्च=सेवाधर्मतत्त्वञ्च । राजसभासु सदाऽनुसन्धेयं रहस्यभूतमुपदेश-माह—सुवर्णेति । सुवर्णमेव पुष्पाणि—सुवर्णपुष्पाणि—सुवर्णपुष्पाणि, तानि सञ्जातानि यस्याः सा, तां—सुवर्णपुष्पिताम्=सुवर्णपूर्णाम्, विचिन्वन्ति=स्वायत्ती-कुर्वन्ति ॥ ४६ ॥ ग्राह्यवाक्याः=आप्ततमाः । पार्थिवं-राजानम् । तद्द्वारेणैव= राजप्रियजनद्वारैव । अन्यथा=स्वयमेव ॥४७॥ सुकृष्टात्=समुचितेन कर्षणादिना संस्कृतात् । ऊषरात्=सस्योत्पत्त्ययोग्यक्षारबहुलभूमेरिव । (ऊखर भूमि की तरह) । फलं=सस्यादिकं धनं च । न=नैव भवति ॥४८॥ द्रव्यस्य प्रकृतिः= प्रवृद्धिः । तया हीनोपि=अल्पधनोऽपि । सेव्यगुणैः=औदार्यादिभिः । अन्वितः= युक्तः । आजीवनं=जीविकात्मकं फलं । कालान्तरादपि=कालान्तरेऽपि । तस्मात्= राजादेर्भवति ॥ ४९ ॥

क्षुधा=अन्नबुभुक्षादिना । परिगतः=व्याप्तः । स्थाणुवत्=निष्पत्रवृक्षवत्

---

१. 'प्रिया हिताश्च ये राज्ञाम्' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यः कृत्वा सुकृतं राज्ञो दुष्करं हितमुत्तमम् ।
लज्जया वक्ति नो किञ्चित्तेन राजा सहायवान् ॥ ९३ ॥
यस्मिन्कृत्यं समावेश्य निर्विशङ्केन चेतसा ।
आस्यते, सेवकः स स्यात्कलत्रमिव चाऽपरम् ॥ ९४ ॥
योऽनाहूतः समभ्येति द्वारि तिष्ठति सर्वदा ।
पृष्टः सत्यं मितं ब्रूते स भृत्योऽर्हो महीभुजाम् ॥ ९५ ॥
अनादिष्टोऽपि भूपस्य दृष्ट्वा हानिकरं च यः ।
यतते तस्य नाशाय, स भृत्योऽर्हो महीभुजाम् ॥ ९६ ॥
ताडितोऽपि दुरुक्तोऽपि दण्डितोऽपि महीभुजा ।
यो न चिन्तयते पापं, स भृत्योऽर्हो महीभुजाम् ॥ ९७ ॥
न गर्वं कुरुते माने, नाऽपमाने च तप्यते ।
स्वाऽऽकारं रक्षयेद्यस्तु स भृत्योऽर्हो महीभुजाम् ॥ ९८ ॥
न क्षुधा पीड्यते यस्तु निद्रया न कदाचन ।
न च शीतातपाद्यैश्च स भृत्योऽर्हो महीभुजाम् ॥ ९९ ॥

यो भृत्यो राज्ञो दुष्करं = परैः कर्तुमशक्यम्, उत्तमं हितं सुकृतं = सुसम्पादितं यथा स्यात्तथा कृत्वाऽपि राज्ञः पुरतो लज्जया स्वकृत्यं न वक्ति, तेनैव भृत्येन राजा सहायवान् = स एव भृत्यो राज्ञोऽनुरूपो भृत्य इति भावः ॥९३॥

निर्विशङ्कं यथा स्यात्तथा आस्यते = स्थीयते । 'राज्ञे' ति शेषः । अपरं = स सेवकः, अपरं = द्वितीयं कलत्रमिव = पत्नीव हितकारीति मन्तव्यः ॥ ९४ ॥

अनादिष्टोऽपि = राज्ञाऽनाज्ञप्तोऽपि राज्ञो हानिकरं व्यसनादिकमत्याहितमुपस्थितं दृष्ट्वा तस्य विनाशाय = प्रतीकाराय यतते स भृत्यो राजयोग्यः ॥ ९६ ॥

स्वाकारं = स्वमनोभावं । रक्षयेत् = निगूहेत् । विकारं नाप्नुयात्, न प्रदर्शयेच्च ॥ ९८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

युद्धकालेऽग्रगो यः स्यात्सदा पृष्ठाऽनुगः पुरे।
प्रभोर्द्वाराश्रितो हर्म्ये, स भवेद्राजवल्लभः ॥ ५८ ॥
'संमतोऽहं विभोर्नित्य'मिति मत्वा [1]व्यतिक्रमेत्।
कृच्छ्रेष्वपि न मर्यादां, स भवेद्राजवल्लभः ॥ ५९ ॥
द्वेषिद्वेषपरो नित्यमिष्टानामिष्टकर्मकृत्।
यो नरो नरनाथस्य, स भवेद्राजवल्लभः ॥ ६० ॥
प्रोक्तः प्रत्युत्तरं नाऽऽह विरुद्धं प्रभुणा च यः।
न समीपे हसत्युच्चैः स भवेद्राजवल्लभः ॥ ६१ ॥
यो रणं शरणं यद्वन्मन्यते भयवर्जितः।
प्रवास स्वपुराऽऽवासं स भवेद्राजवल्लभः ॥ ६२ ॥
न कुर्यान्नरनाथस्य योषिद्भिः सह सङ्गतिम्।
न निन्दां न विवादं च, स भवेद्राजवल्लभः' ॥ ६३ ॥

राजप्रमदाः। वृथाकारान्=चित्रलिखितपुत्तलिकावत् पश्येत् स राजप्रियो भवति ॥ ५७ ॥

अग्रगः=अग्रणी। पुरे=नगरे। हर्म्ये=राजगृहे। द्वाराश्रितः=सर्वदा सन्निहितः ॥ ५८ ॥

कृच्छ्रेष्वपि=आपत्कालेष्वपि, यो मर्यादां=राजादिसन्मानमर्यादां, नियमञ्च न व्यतिक्रमेत्=उल्लंघयेत्, स राजवल्लभो भवति ॥ ५९ ॥

राज्ञो—द्वेषिषु,=द्वेषपरः। राज्ञः—इष्टानां=मित्राणाम्। इष्टकर्मकृत्=प्रियकृत्, राजवल्लभः ॥ ६० ॥ प्रभुणा विरुद्धम्=अनुचितम्—उक्तोऽपि यः प्रत्युत्तरं नाह=न ब्रूते, स राजवल्लभो भवति ॥ ६१ ॥

यो निर्भयः पुमान्—रणं=युद्धं, शरणं=गृहमिव मन्यते। प्रवासं=दूराध्वयात्राञ्च, स्वपुरनिवासमिव मन्यते स राजप्रियो भवति ॥ ६२ ॥

---

१ 'व्यतिव्रजेत्'।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करटक आह–'अथ भवांस्तत्र गत्वा किन्तावत्प्रथमं वक्ष्यति, तत्तावदुच्यताम् ।'

दमनक आह–

उत्तरादुत्तरं वाक्यं [1]वदतां सम्प्रजायते ।
सुवृष्टिगुणसम्पन्नाद्बीजाद्बीजमिवाऽपरम् ॥ ६४ ॥
अपायसन्दर्शनजां विपत्तिमुपायसन्दर्शनजां च सिद्धिम् ।
मेधाविनो नीतिविदः[2] प्रयुक्तां पुरःस्फुरन्तीमिव वर्णयन्ति ॥६५॥
एकेषां वाचि शुकवदन्येषां हृदि मूकवत् ।
हृदि वाचि तथाऽन्येषां वल्गु वल्गन्ति सूक्तयः ॥ ६६ ॥

तावत्=आदौ । वक्ष्यति=अभिधास्यति । वदतां=कथां कुर्वताम् । उत्तरात्-उत्तरम्= उत्तरं श्रुत्वैव प्रत्युत्तरं स्फुरति, यथा सुवृष्टिनिष्पन्नादुत्तमाद्बीजात्क्षेत्रे निक्षिप्ताद्बीजान्तरं स्वयमेव भवति ॥ ६४ ॥

अपगतोऽयः=शुभावहो विधिर्यस्मादसौ–अपायः । 'अपायोऽपगमे तथा । पलायनेऽथाऽपेताये' इति केशवः । 'अयः शुभावहो विधि'रित्यमरश्च । अपायस्य सन्दर्शनं, तस्माज्जाताम्-अपायसन्दर्शनजाम्=अनिष्टमन्त्रनिर्धारणानुष्ठानोद्भूताम् । विपत्तिं=राज्यादिहानिम् । उपायसन्दर्शनजां=समुचितसन्धिविग्रहाद्यनुष्ठानसमुद्भूताम् । प्रयुक्तां=याथातथ्येन निर्धारितां, सिद्धिं=शत्रुवधादिसिद्धिं, लाभं च । पुरः स्फुरन्तीमिव=करतलामलकवच्चक्षुषा विभाव्यमानामिव वर्णयन्ति । अनुचिताचरणजन्यां विपदं, श्रेष्ठनिर्धारितोपायानुष्ठानजां सिद्धिञ्च, तत्त्वविदो=नीतिविशारदाः प्रथममेव प्रदर्शयन्तीति भावः । 'नीतिगुणप्रयुक्ता'-मिति पाठान्तरम् । तत्र–नीतिगुणैः प्रयुक्ताम् = षाड्गुण्यशालिनीमित्यर्थो बोध्यः ॥ ६५ ॥

वल्गु = मनोरमं यथा स्यात्तथा । वल्गन्ति = प्रस्फुरन्ति ॥ ६६ ॥

---

१ उत्तरादेवं जायते' । २ 'नीतिगुणे'ति, 'नीतिविधीति' च पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न चाऽहमप्राप्तकालं वक्ष्ये। आकर्णितं मया नीतिसारं पितुः पूर्वमुत्सङ्गं हि निषेवता—

'अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन्।
लभते बहुवज्ञानमपमानं च पुष्कलम्' ॥ ६७ ॥

करटक आह—

'दुराराध्या हि राजानः पर्वता इव सर्वदा।
व्यालाऽऽकीर्णाः सुविषमाः कठिना दुष्टसेविताः' ॥ ६८ ॥

तथा च—

[1]भोगिनः कञ्चुकाऽऽविष्टाः कुटिलाः क्रूरचेष्टिताः।
सुदुष्टा मन्त्रसाध्याश्च राजानः पन्नगा इव ॥ ६९ ॥
द्विजिह्वाः क्रूरकर्माणोऽनिष्टाश्छिद्रानुसारिणः।
दूरतोऽपि हि पश्यन्ति राजानो भुजगा इव ॥ ७० ॥

उत्सङ्गं = क्रोडम्। निषेवता=भजमानेन। बाल्यावस्थायामिति यावत्। बहु = विपुलम्। अवज्ञानं = तिरस्कारम्। पुष्कलं=बहुलम् ॥ ६७ ॥

व्यालैः = खलैः, हिंस्रसिंहादिपशुभिर्वनगजैश्च। आकीर्णाः = व्याप्ताः। 'व्यालो दुष्टगजे सर्पे शठे श्वापदसिंहयोः' इति हैमः। सुविषमाः = अपायबहुलाः, निम्नोन्नतप्रदेशविषमाश्च। कठिनाः = क्रूराः, शिलासङ्कुलाश्च। दुष्टसेविताः = नटविटादिक्रूरजनपरवशाः, सर्पादिदुष्टजन्तुदुर्गमाश्च ॥ ६८ ॥

भोगिनः = भोगशालिनः। 'अहेः शरीरं भोगः स्यात्' इत्यमरः। 'भोगी भुजङ्गमेऽपि स्याद्राममात्रनृपे पुमान्' इति विश्वः। कञ्चुकाविष्टाः = धृतकवचाः, कञ्चुकावृताश्च। 'कञ्चुको[2] वारबाणे स्यान्निर्मोके कवचेऽपि चे'ति विश्वः। पन्नगाः = सर्पाः ॥ ६९ ॥

द्विजिह्वाः = जिह्वाद्वययुताः, कूटभाषिणश्च। अनिष्टाः = अनिष्टकारकाः। छिद्रानुसारिणः = बिलेशयाः, दोषदर्शिनश्च। 'छिद्रं दोषे च विवरे' इति हैमः ॥ ७० ॥

---

१ 'भोगिनः कञ्चुकासक्ताः क्रूराः कुटिलगामिनः। सुरौद्रा मन्त्रसाध्याश्च'— इति पाठान्तरम्। २ कञ्चुकः = 'चोला' 'अंगरखा' 'सांपकी केचुली'।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वल्पमप्यपकुर्वन्ति येऽभीष्टा हि महीपतेः ।
ते वह्निविव दह्यन्ते पतङ्गाः पापचेतसः ॥ ७१ ॥
दुरारोहपदं राज्ञां सर्वलोकनमस्कृतम् ।
स्वल्पेनाऽप्यपकारेण ब्राह्मण्यमिव दुष्यति ॥ ७२ ॥
दुराराध्याः श्रियो राज्ञां दुरापा दुष्परिग्रहाः ।
तिष्ठन्त्याप इवाऽऽधारे चिरमात्मनि संस्थिताः ॥ ७३ ॥

दमनक आह—सत्यमेतत् । किन्तु—

यस्य यस्य हि यो भावस्तेन तेन समाचरन्[1] ।
अनुप्रविश्य मेधावी क्षिप्रमात्मवशं नयेत् ॥ ७४ ॥
भर्तुश्चित्तानुवर्त्तित्वं सुवृत्तं चाऽनुजीविनाम् ।
राज्ञसाश्चापि गृह्यन्ते नित्यं छन्दाऽनुवर्तिभिः ॥ ७५ ॥

राज्ञः प्रिया अपि यदि स्वल्पमपि राज्ञोऽपकुर्वन्ति तदा पतङ्गा वह्निविव ते दह्यन्ते = स्वयमेव विनश्यन्ति । 'राजकोपानले' इति शेषः ॥ ७१ ॥

ब्राह्मण्यं = ब्रह्मतेजः, दुष्यति = विकारं भजते, दूषयतीति वा ॥ ७२ ॥

राज्ञां श्रियः = राजलक्ष्म्यः । दुरापाः = दुर्लभाः । दुष्परिग्रहाः = दुःखेन रक्षणीयाः । आत्मनि संस्थिताः = स्वयं निरीक्षिताः, स्ववशे स्थापिता एव च, जलाधारे जलमिव । चिरं तिष्ठन्ति । यथा जलाधार एव जलं चिरं तिष्ठति, नान्यत्र, एवं स्ववशे विनीत एव राजनि श्रीस्तिष्ठति नान्यत्रेत्याशयः ॥ ७३ ॥

अनुप्रविश्य = तदनुकूलाचरणं कृत्वैव । क्षिप्रं = शीघ्रम् ॥ ७४ ॥

भर्तुः = स्वामिनः । चित्तानुवर्त्तित्वम् = मनोऽनुकूलकर्तृत्वम् । अनुजीविनां = सेवकानां । सुवृत्तं = सुशीलम् । राजवशीकरणसाधनम् । छन्दमनुवर्त्तन्ते तच्छीलैः छन्दानुवर्त्तिभिः = अभिप्रायपरिपालकैः । 'अभिप्रायश्छन्द आशयः' इत्यमरः । (छन्दानुवर्त्ती = 'खुशामदी' 'चापलूस') ॥ ७५ ॥

---

१ 'तेन तेन हि तं नरम्' ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सरुषि नृपे स्तुतिवचनं[1], तदभिमते प्रेम, तद्द्विषि द्वेषः ।
तद्दानस्य च शंसा अमन्त्रतन्त्रं[2] वशीकरणम् ॥ ७६ ॥

करटक आह–'यद्येवमभिमतं तर्हि शिवास्ते पन्थानः सन्तु, यथाऽभिलषितमनुष्ठीयताम् ।

अप्रमादश्च कर्त्तव्यस्त्वया राज्ञः समाश्रये ।
त्वदीयस्य शरीरस्य वयं भाग्योपजीविनः' ॥

सोऽपि तं प्रणम्य पिङ्गलकाभिमुखं प्रतस्थे ।

अथाऽऽगच्छन्तं दमनकमालोक्य पिङ्गलको द्वाःस्थमब्रवीत्–'अपसार्यतां वेत्रलता, अयमस्माकं चिरन्तनो मन्त्रिपुत्रो दमनकोऽव्याहतप्रवेशः, तत्प्रवेश्यतां द्वितीयमण्डलभागी'ति ।

स आह—'यथाऽवादीद्भवान्'—इति ।

अथ प्रविश्य दमनको निर्दिष्टे आसने पिङ्गलकं प्रणम्य प्राप्ताऽनुज्ञ उपविष्टः । स तु तस्य नखकुलिशालङ्कृतं दक्षिणपाणिमुपरि दत्त्वा मानपुरःसरमुवाच–'अपि शिवं भवतः ? । कस्माच्चिराद् दृष्टोऽसि ? ।'

नृपे=राजनि, सरुषि=क्रुद्धे सति, स्तुतिवचनं=मृदुमधुरं प्रशंसावचनं, स्तुतिवाक्यप्रयोगः । तदभिमते=राजवल्लभे । प्रेम=अनुरागः । तद्द्विषि=राजविरुद्धे वस्तुनि, जने च । तद्दानस्य=राजदानस्य च, शंसा=प्रशंसा । न स्तो मन्त्रतन्त्र यस्मिन् तत्–अमन्त्रतन्त्रं=मन्त्रतन्त्ररहितं, मन्त्रातन्त्राभ्यां विनापि । वशीकरणं=वशीकरणोपायः ॥ ७६ ॥

अभिमतम्=अभिप्रायः । पन्थानस्ते शिवाः=शोभनाः कुशलप्रदाः,शुभप्रदाश्च । सन्तु=भवन्तु, गम्यतामित्यर्थः । सः=दमनकः । द्वाःस्थं = द्वारपालं । वेत्रलता=वेत्रयष्टी । (छड़ी) । अव्याहतः = अनवरुद्धः प्रवेशो यस्यासौ तथा । द्वितीयमण्डले = अनुयायिमण्डले प्रवेशमर्हति । अतस्तत्रासनं देहीत्याशयः । मन्त्रिणस्तत्समानाश्च हि द्वितीयमण्डलभागिनः । सः = सिंहः । नखान्येव कुलिशानि = वज्राणि, तैरलङ्कृतं, पाणिं = हस्तम् । उपरि = मस्तकोपरि । मानपुरःसरं =

---

१ 'सरुषि नतिस्तुति' । २ 'अमन्त्रमूल' मिति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दमनक आह—'यद्यपि न किञ्चिद्देवपादानामस्माभिः प्रयोजनम्, तदपि[1] भवतां प्राप्तकालं वक्तव्यं, यत[2] उत्तममध्यमाऽधमैः सर्वैरपि राज्ञां प्रयोजनम् ।

उक्तञ्च—

दन्तस्य निष्कोषणकेन नित्यं, कर्णस्य कण्डूयकेन वापि ।
तृणेन कार्यं भवतीश्वराणां, किमङ्ग ! वाग्घस्तवता नरेण ॥७७॥

तथा वयं देवपादानामन्वयाऽऽगता भृत्या आपत्स्वपि पृष्ठगामिनो यद्यपि स्वमधिकारं न लभामहे, तथापि देवपादानामेतद्युक्तं न भवति।

उक्तञ्च—

स्थानेष्वेव नियोक्तव्या भृत्याश्चाऽऽभरणानि च ।
नहि चूडामणिः पादे 'प्रभवामी'ति बध्यते ॥ ७८ ॥

यतः—

अनभिज्ञो गुणानां यो न भृत्यैरनुगम्यते ।
धनाढ्योऽपि कुलीनोऽपि क्रमाऽऽयातोऽपि भूपतिः ॥ ७९ ॥

ससत्कारम् । तस्य = दमनकस्य । देवपादानां = प्रभूणां भवतां, न प्रयोजनं= नास्ति किमपि कार्यम् । नास्माकं महाराजः कदापि स्मरतीत्याशयः । प्राप्त-कालम्=उचितम् । परं=किन्तु । 'तदपी'-त्यपि पाठः । वक्तव्यं = मया किञ्चि-द्वक्तव्यमस्तीत्याशयः ।

दन्तस्येति । निष्कोषणकेन = दन्तासक्तोच्छिष्टनिरासादिना, कण्डूयन-केन = कर्णमलकण्डूनिराकरणेन च । ईश्वराणां = राज्ञां, जनानामिति यावत् । अङ्गेति सम्बोधने । वाग्घस्तवता = वाणीपाणिसंयुतेन । (समय पर तृण से भी काम पड़ता है, आदमी की तो बात ही क्या है) । राज्ञां प्रयोजनं 'भवतीं'ति शेषः ।

अन्वयागताः = कुलक्रमागताः । स्वमधिकारं = मन्त्रिपदादिकम् ।

प्रभवामि = अहं प्रभुरस्मि' इति कृत्वा । चूडामणिः = शिरोभूषणं—पादे न बध्यतेऽनौचित्यात ॥ ७८ ॥

---

१ 'परं' । २ 'यतो न खलु राज्ञामुपयोगकारणं किञ्चिन्न भवति' । पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

BVBSSMV

उक्तञ्च—

असमैः समीयमानः, समैश्च परिहीयमानसत्कारः ।
धुरि चाऽनियुज्यमानस्त्रिभिरर्थपतिं त्यजति भृत्यः ॥ ८० ॥

यच्चाऽविवेकितया राजा भृत्यानुत्तमपदयोग्यान् हीनाऽधमस्थाने नियोजयति, न ते तत्रैव तिष्ठन्ति[1], स भूपतेर्दोषो, न तेषाम् ।

कनकभूषणसङ्ग्रहणोचितो
यदि मणिस्त्रपुणि[2] प्रतिबध्यते ।
न स विरौति, न चापि न[3] शोभते,
भवति बोजयितुर्वचनीयता ॥ ८१ ॥

यच्च स्वाम्येवं वदति-'चिराद्दृश्यसे' इति, तदपि श्रूयताम् ।

सव्यदक्षिणयोर्यत्र विशेषो नास्ति हस्तयोः ।

क्रमायातः = कुलपरम्परागतोऽपि, भूपतिः-गुणानां = गुणतारतम्यस्य अनभिज्ञश्चेत्—भृत्यैर्नाश्रीयते । समीयमानः = समन्वीयमानः । असदृशजनतुल्यतया गण्यमान इति यावत् । समैः = स्वसमापेक्षया, परिहीयमानः सत्कारो यस्यासौ तथा । धुरि = अग्रे । स्वसमुचिते स्थाने । अर्थपतिं = स्वामिनम् । भृत्यः-त्रिभिः कारणैस्त्यजतीत्यर्थः । उत्तमपदयोग्यान् = उत्कृष्टाधिकारसमुचितान् भृत्यान्, हीने = अनुत्तमे । अधमे = नीचतमेच । स्थाने = अधिकारे । ते = उत्तमाः, तत्रैव = स्वोचिताधिकारे, न तिष्ठन्ति = न नियुज्यन्ते,-एतद्द्वयं भूपतेरेव दोषः । तेषाम्= उत्तमानां सेवकानाम् । नाऽत्रकश्चन दोषः ।

कनकेति । कनकमये भूषणे यत्संग्रहणं = स्थापनं । तस्योचितः = योग्यः । त्रपुणि = वङ्गे ('रांगा') । स मणिर्न विरौति = नैव किञ्चिद्वदति, किञ्च न शोभते इति न, किन्तु शोभते एव । परं वचनीयता = निन्दा ॥ ८१ ॥

तदपि = तद्विषयेऽपि । श्रूयतां = मदुक्तं श्रुत्वाऽवधार्यताम् । सव्यः=वामः ।

---

१ 'यत्ते तत्रैव तिष्ठन्ती'त्यपि केचित्पठन्ति । तत्रैव = अयोग्यस्थानेएव च ।
२ 'प्रणिधीयते' इति पा० । ३ 'विशोभते' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कस्तत्र क्षणमप्यार्यो विद्यमानगतिर्वसेत् ? ॥ ८२ ॥
काचे मणिर्मणौ काचो येषां बुद्धिर्विकल्पते ।
न तेषां सन्निधौ भृत्यो नाममात्रोऽपि तिष्ठति ॥ ८३ ॥
परीक्षका यत्र न सन्ति देशे
नाऽर्घन्ति रत्नानि समुद्रजानि ।
आभीरदेशे किल चन्द्रकान्तं
त्रिभिर्वराटैर्विपणन्ति गोपाः ॥ ८४ ॥
लोहिताख्यस्य च मणेः पद्मरागस्य चाऽन्तरम् ।
यत्र नास्ति कथं तत्र क्रियते रत्नविक्रयः ? ॥ ८५ ॥
निर्विशेषं यदा स्वामी समं भृत्येषु वर्तते ।
तत्रोद्यमसमर्थानामुत्साहः परिहीयते ॥ ८६ ॥

विशेषः = भेदः । विद्यमाना गतिर्यस्यासौ = विद्यमानगतिः = आश्रयान्तरान्वेषणयोग्यः । समर्थः, आर्यः = सज्जनः । नैव वसेदित्याशयः ॥८२॥

बुद्धिः-विकल्पते = सन्दिग्धे । येषामीदृशं संशयात्मकं ज्ञानमुत्पद्यते, तेषां= भ्रान्तानाम् , नाममात्रः = भृत्यनामधारी कोऽपि ॥ ८३ ॥

यत्र परीक्षका न सन्ति तत्र समुद्रजानि रत्नानि=मौक्तिकादीनि न अर्घन्ति= न स्वोचितं मूल्यं लभन्ते । आभीरदेशे = पश्चिमसमुद्रतीरवर्त्यपरान्तप्रदेशे ('कच्छ-भुज' काठियावाड़' या 'हरियाणा प्रान्त') । चन्द्रकान्तमणिं । विराटैः = कपर्दिकाभिः । ('तीन कौड़ी में') । गोपाः = आभीराः ('अहीर') । वविपणन्ति=विक्रीणन्ति ॥८४॥ लोहिताख्यः = लोहितानामा मणिः, ('लाल') । 'लोहिताक्षस्ये'ति पाठान्तरम् । पद्मरागः = पद्मरागमणिः ('मानिक') । उभयोस्तुल्यवर्णत्वेऽपि पद्मरागाल्लोहितमणिर्महर्घ इति भावः ॥ ८५ ॥

उत्तमाधमेषु निर्विशेषं = भेदशून्यं यथा स्यात्तथा, सममेव = तुल्यमेव यदि, स्वामी = प्रभुः=प्रवर्त्तते-तदा उद्योगसमर्थानाम् = उद्योगशालिनामुत्तमानां भृत्यानामुत्साहः, परिहीयते = क्षीयते, नश्यति । 'सर्वभृत्येषु' इति केचित्पठन्ति ॥८६॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न विना पार्थिवो भृत्यैर्न भृत्याः पार्थिवं विना ।
तेषां च व्यवहारोऽयं परस्परनिबन्धनः ॥ ८७ ॥
भृत्यैर्विना स्वयं राजा लोकाऽनुग्रहकारिभिः ।
मयूखैरिव दीप्तांशुस्तेजस्व्यपि न शोभते ॥ ८८ ॥
अरैः सन्धार्यते नाभिर्नाभौ चाऽराः प्रतिष्ठिताः ।
स्वामि-सेवकयोरेवं वृत्तिचक्रं प्रवर्तते ॥ ८९ ॥
शिरसा विधृता नित्यं स्नेहेन परिपालिताः ।
केशा अपि विरज्यन्ते निःस्नेहाः, किं न सेवकाः ॥ ९० ॥
राजा तुष्टो हि भृत्यानामर्थमात्रं यच्छति ।
ते तु संमानमात्रेण प्राणैरप्युपकुर्वते ॥ ९१ ॥
एवं ज्ञात्वा नरेन्द्रेण भृत्याः कार्या विचक्षणाः ।
कुलीनाः शौर्यसयुक्ताः शक्ता भक्ताः क्रमागताः ॥ ९२ ॥

परस्परनिबन्धनः=अन्योन्याश्रितः । लोकानुग्रहकारिभिः=लोकोपकारिभिः । मयूखैः=किरणैर्विना । दीप्तांशुः=सूर्य इव-तेजस्वी अपि=प्रतापवानपि राजा, लोकानुग्रहकारिभिर्भृत्यैर्विना न शोभते ॥८८॥ अरैः=रथचक्रावयवैर्दण्डायमानैः । नाभिः=रथचक्रमध्यभागपिण्डिका—धार्यते । नाभौ च अराः=रथाङ्गचक्र-दण्डाः । प्रतिष्ठिताः=संनिविष्टाः । वृत्तिचक्रं=लोकयात्रारूपं चक्रं । जीविका च । प्रवर्त्तते=प्रचलति ॥८९॥

शिरसा विधृताः=मस्तके स्थापिताः, नितरां सत्कृताश्च । स्नेहेन=तैलादिना च । निःस्नेहाः=तैलादिरहिताः । अनुरागवैकल्ये सति, च, किं न विरज्यन्ते=किं न विकृतवर्णाः भवन्ति, अपितु विरज्यन्ते एव । केशा यदि स्नेहरहिताः, अनु-रागवैकल्ये सति विरज्यन्ते तर्हि सेवकाः किं ? । तेषां विरागे किमु वक्तव्य-मित्याशयः । 'किं नु सेवकाः' इति पाठान्तरम् ॥ ९० ॥

अर्थमात्रं=धनमेव केवलं । संमानमात्रेण=संमानेन तोषिताः । प्राणैरपि=स्वप्राणपरित्यागेनाऽपि । उपकुर्वते='राजान' मिति शेषः ॥ ९१ ॥

विचक्षणाः=कुशलाः ॥ ९२ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यः कृत्वा सुकृतं राज्ञो दुष्करं हितमुत्तमम् ।
लज्जया वक्ति नो किञ्चित्तेन राजा सहायवान् ॥ ९३ ॥
यस्मिन्कृत्यं समावेश्य निर्विशङ्केन चेतसा ।
आस्यते, सेवकः स स्यात्कलत्रमिव चाऽपरम् ॥ ९४ ॥
योऽनाहूतः समभ्येति द्वारि तिष्ठति सर्वदा ।
पृष्टः सत्यं मितं ब्रूते स भृत्योऽर्हो महीभुजाम् ॥ ९५ ॥
अनादिष्टोऽपि भूपस्य दृष्ट्वा हानिकरं च यः ।
यतते तस्य नाशाय, स भृत्योऽर्हो महीभुजाम् ॥ ९६ ॥
ताडितोऽपि दुरुक्तोऽपि दण्डितोऽपि महीभुजा ।
यो न चिन्तयते पापं, स भृत्योऽर्हो महीभुजाम् ॥ ९७ ॥
न गर्वं कुरुते माने, नाऽपमाने च तप्यते ।
स्वाऽऽकारं रक्षयेद्यस्तु स भृत्योऽर्हो महीभुजाम् ॥ ९८ ॥
न क्षुधा पीड्यते यस्तु निद्रया न कदाचन ।
न च शीतातपाद्यैश्च स भृत्योऽर्हो महीभुजाम् ॥ ९९ ॥

यो भृत्यो राज्ञो दुष्करं = परैः कर्तुमशक्यम्, उत्तमं हितं सुकृतं = सुसम्पादितं यथा स्यात्तथा कृत्वाऽपि राज्ञः पुरतो लज्जया स्वकृत्यं न वक्ति, तेनैव भृत्येन राजा सहायवान् = स एव भृत्यो राज्ञोऽनुरूपो भृत्य इति भावः ॥९३॥

निर्विशङ्कं यथा स्यात्तथा आस्यते = स्थीयते । 'राज्ञे' ति शेषः । अपरं = स सेवकः, अपरं = द्वितीयं कलत्रमिव = पत्नीव हितकारीति मन्तव्यः ॥ ९४ ॥

अनादिष्टोऽपि = राज्ञाऽनाज्ञप्तोऽपि राज्ञो हानिकरं व्यसनादिकमत्याहितमुपस्थितं दृष्ट्वा तस्य विनाशाय = प्रतीकाराय यतते स भृत्यो राजयोग्यः ॥ ९६ ॥

स्वाकारं = स्वमनोभावं । रक्षयेत् = निगूहेत् । विकारं नाप्नुयात्, न प्रदर्शयेच्च ॥ ९८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रुत्वा साङ्ग्रामिकीं वार्तां भविष्यां स्वामिनं प्रति ।
प्रसन्नाऽऽस्यो भवेद्यस्तु स भृत्योऽर्हो महीभुजाम् ॥ १०० ॥
सीमा वृद्धिं समायाति शुक्लपक्ष इवोडुराट् ।
नियोगसंस्थिते यस्मिन्स भृत्योऽर्हो महीभुजाम् ॥ १०१ ॥
सीमा सङ्कोचमायाति वह्नौ चर्म इवाऽऽहितम् ।
स्थिते यस्मिन्स तु त्याज्यो भृत्यो राज्यं समीहता ॥ १०२ ॥

तथा 'शृगालोऽय' मिति मन्यमानेन ममोपरि स्वामिना यद्यवज्ञा क्रियते, तदप्ययुक्तम् ।

उक्तञ्च यतः—

कौशेयं कृमिजं, सुवर्णमुपलाद्, दूर्वाऽपि गोरोमतः,
पङ्काक्तामरसं, शशाङ्क उदधेरिन्दीवरं गोमयात् ।
काष्ठादग्निरहेः फणादपि मणिर्गोपित्ततो रोचना,
प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनो गच्छन्ति, किं जन्मना ॥१०३॥

भविष्यां सांग्रामिकीं = भविष्ययुद्धविषयिणीं, श्रुत्वा यो भृत्यः प्रसन्नवदनो भवति स भृत्यः श्रेष्ठ. ॥ १०० ॥

यस्मिन् भृत्ये नियोगसंस्थिते = अधिकारारूढे सति, राज्ञो राज्यस्य सीमा (राज्यं) प्रत्यहं वर्धते स भृत्यः श्रेष्ठः ॥ १०१ ॥

यस्मिन् नियोगस्थे = अधिकारस्थिते, यथा वह्नौ क्षिप्तं चर्म सङ्कोचमेति तथैव—राज्यं हीयते-स भृत्योऽधमः = निकृष्टः । त्याज्यः ॥ १०२ ॥

अवज्ञा = तिरस्कारः । कौशेयं = कृमिजं पट्टसूत्रं ('रेशम') । कृमेरुत्पद्यते । सुवर्णमुपलप्रायात्पर्वतादुद्भवति । पुराणेषु गोरोमतो दूर्वोत्पत्तिर्गीयते । तामरसं = पङ्कजम् । उदधेः=क्षारजलाविलात्सागरात्—चन्द्रोत्पत्तिः । इन्दीवरं = नीलोत्पलं नाम स्थलकमलभेदः । गोमयात् = अवस्करात् ('खाद' 'कूडा कर्कट' 'गोबर आदि से) । रोचना = गोरोचना । 'भवती' ति शेषः । एवञ्च स्वगुणोदयेनैव गुणिनः=महान्तः, प्राकाश्यं = पूजां प्रसिद्धिं च, गच्छन्ति । तत्र जन्मादिचिन्ता न कर्तव्या ॥ १०३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मूषिका गृहजाताऽपि हन्तव्या स्वाऽपकारिणी ।
[1]भक्ष्यप्रदानैर्मार्जारो हितकृत्प्रार्थ्यतेऽन्यतः ॥ १०४ ॥
[2]एरण्डभिण्डाऽर्कनडैः प्रभूतैरपि सञ्चितैः ।
दारुकृत्यं यथा नास्ति, तथैवाऽज्ञैः प्रयोजनम् ॥ १०५ ॥
किं भक्तेनाऽसमर्थेन किं, शक्तेनाऽपकारिणा ? ।
भक्तं शक्तञ्च मां राजन्नाऽवज्ञातुं त्वमर्हसि ॥ १०६ ॥

पिङ्गलक आह—'भवत्वेवं तावत्, असमर्थः समर्थो वा, चिरन्तनस्त्वमस्माकं मन्त्रिपुत्रः, तद्विश्रब्धं ब्रूहि—यत्किञ्चिद्वक्तुकामः ।'

दमनक आह—'देव ! विज्ञाप्यं किञ्चिदस्ति ।'

पिङ्गलक आह—'तन्निवेदयाऽभिप्रेतम् ।'

सोऽब्रवीत्—

'अपि स्वल्पतरं कार्यं यद्भवेत्पृथिवीपतेः ।
तन्न वाच्यं सभामध्ये' प्रोवाचेदं बृहस्पतिः ॥ १०७ ॥

तदेकान्तिके मद्विज्ञाप्यमाकर्णयन्तु देवपादाः ।

गृहजातापि—अपकारकारितया मूषिका—हन्यते, मूषकविनाशकतयोपकारी मार्जारश्च अन्यतोऽपि = गृहान्तरादपि आनीय स्वगृहे रक्ष्यते इति उपकारापकाराभ्यामेवानुरागविरागौ, न सम्बन्धितयेति भावः ॥ १०४ ॥

एरण्डस्य ('रेडी') । भिण्डस्य = तरुभेदस्य, (?) । अर्कस्य=मन्दारस्य । ('आक' 'मन्दार') नडैः = काण्डैः ('डण्ठल' 'फरड़ा') । 'एरण्डपिण्डार्कनलै' रिति पाठान्तरम् । तत्र डलयोरैक्यात्—नलाः = नडा एव । दारुकृत्यं = स्तम्भादिनिर्माणगृहधारणादि कार्यम् । 'एरण्डकाण्डार्कनडै' रिति तु गौडाः पठन्ति ॥ १०५ ॥

असमर्थः समर्थो वा त्वं नात्र मे विचारः, केवलं 'पुराणमन्त्रिपुत्र' इत्येव मे प्रियोऽसि—इत्याशयः । विश्रब्धं = निर्भयं ।

---

१ 'उपप्रदानै' रिति पाठे—भक्ष्यादिदानैः । २ 'एरण्डकाण्डार्क' इति गौडाः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यतः—

षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुष्कर्णः स्थिरो भवेत् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन षट्कर्णं वर्जयेत्सुधीः ॥ १०८ ॥

अथ पिङ्गलकाऽभिप्रायज्ञा व्याघ्र-द्वीपि-वृकपुरःसराः सर्वेऽपि तद्वचः समाकर्ण्य संसदि तत्क्षणादेव दूरीभूताः, कृताश्च ।

ततश्च दमनक आह—'उदकग्रहणार्थं प्रवृत्तस्य स्वामिनः किमिह निवृत्त्याऽवस्थानम् ? ।

पिङ्गलकः सविलक्षस्मितमाह—'न किञ्चिदपि ।'

सोऽब्रवीत्—'देव ! यद्यनाख्येयं तत्तिष्ठतु' ।

उक्तञ्च—

[1]दारेषु किञ्चित्स्वजनेषु किञ्चिद्गोप्यं वयस्येषु सुतेषु किञ्चित् ।
'युक्तं' 'न वाऽयुक्त'मिदं विचिन्त्य वदेद्विपश्चिन्महतोऽनुरोधात् ॥१०९॥

तच्छ्रुत्वा पिङ्गलकश्चिन्तयामास—'योग्योऽयं दृश्यते, तत्कथयाम्येतस्याऽग्रे आत्मनोऽभिप्रायम् ।'

षट्कर्णाः यत्र—('श्रोतृतये'ति शेषः—) असौ षट्कर्णः = त्रिभिर्जनैः श्रुतः । भिद्यते = परैर्ज्ञायते । षण्णां कर्णानां समाहारः—षट्कर्ण—पुरुषत्रयं, वर्जयेत्—'मन्त्रणावसरे' इति शेषः । यद्वा—'षट्कर्णं मन्त्रं वर्जये' दिति सम्बन्धः । व्याघ्रः = शार्दूलः ('बघेरा') । वृकः = ईहामृगः ('भेडिया') । द्वीपी = व्याघ्रभेदः ('चीता' 'लकड़बग्घा') । तद्वचः = दमनकवचनं, संसदि = सभायां । कृताः=ये भावानभिज्ञा मूर्खास्ते द्वारपालैर्दूरीकृताश्च । सविलक्षस्मितं= स्वाकारप्रच्छादनार्थं किञ्चिद्धासं कृत्वा ('सूखी हंसी हंसकर') । 'आह' इति शेषः । न 'किञ्चिदपि'—कारणमस्ती'ति शेषः । अत्र यत्कारणमस्ति तन्नाख्येयं कस्यापीत्याशयः । तिष्ठतु = आस्तां तावत् , मा वद । (रहने दीजिए) ।

दारेष्विति । दारेषु किञ्चिद्गोप्यं भवति, स्वजनेषु किञ्चिद्गोप्यं भवति,

---

१ 'दारेषु किञ्चित्पुरुषस्य वाच्यं, किञ्चिद्वयस्येषु, सुतेषु किञ्चित् ।
सर्वेऽपि ते प्रत्ययिनो भवन्ति, सर्वं न सर्वस्य च संप्रकाश्यम् ॥ पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उक्तञ्च-

सुहृदि निरन्तरचित्ते, गुणवति भृत्येऽनुवर्तिनि कलत्रे ।
स्वामिनि सौहृदयुक्ते निवेद्य दुःखं सुखी भवति ॥ ११० ॥

(प्रकाशं-) भो दमनक ! शृणोषि शब्दं दूरान्महान्तम् ?' । सोऽब्रवीत् स्वामिन् ! शृणोमि । 'ततः किम् ?' । पिङ्गलक आह-'भद्र ! अहमस्माद्वनाद् गन्तुमिच्छामि ।' दमनक आह-'कस्मात् ?' ।

पिङ्गलक आह-'यतोऽद्याऽस्मद्वने किमप्यपूर्वं सत्त्वं प्रविष्टं, यस्यायं महाञ्छब्दः श्रूयते, तस्य च शब्दस्याऽनुरूपेण सत्त्वेन भाव्यम्, सत्त्वानुरूपेण च पराक्रमेण ('भाव्यम्')-इति ।

दमनक आह—'यच्छब्दमात्रादपि भयमुपगतः स्वामी, तदप्ययुक्तम् ।

उक्तञ्च-

अम्भसा भिद्यते सेतुस्तथा मन्त्रोऽप्यरक्षितः ।
पैशुन्याद्भिद्यते स्नेहो, भिद्यते वाग्भिरातुरः ॥ १११ ॥

तन्न युक्तं स्वामिनः पूर्वपुरुषोपार्जितं कुलक्रमागतं वनमेकपदे एव त्यक्तुम् । यतो भेरी-वेणु-वीणा-मृदङ्ग-ताल-पटह-शङ्ख-काहलादिभेदेन शब्दा अनेकविधा भवन्ति, तन्न केवलाच्छब्दमात्रादपि भेतव्यम् ।

महतामनुरोधादपि-युक्तायुक्तं विचार्यैव वदेत्, न सहसेत्यर्थः । पाठान्तरे-प्रत्ययिनः=विश्वस्ता एव । 'तथापी'ति शेषः । संप्रकाश्यं = कथनीयम् । कस्य किञ्चिदाख्येय, कस्य किञ्चित् ,न सर्वस्य सर्वमाख्येयम् भवतीत्यर्थः ॥ १०९ ॥

निरन्तरं चित्तं यस्यासौ निरन्तरचित्तः, तस्मिन्=स्वार्पितधने, नितरामभेदभावमापन्ने इति यावत् । 'निरन्तरचित्ते' इति पाठे अनुकूलचित्ते इत्यर्थः । अनुवर्त्तिनि=स्वानुकूले । कलत्रे=दारेषु च । दुःखं=क्लेशं, दुःखकारणं च । निवेद्य=उक्त्वा । जनः सुखी भवति ।

सत्त्वं=जन्तुभेदः, पिशाचादिर्वा । 'सत्त्वं द्रव्ये पिशाचादौ गुणे जन्तुषु' इति कोशः । उपगतः=समायातः । आतुरः=व्याकुलः, ('घबड़ाया हुआ') । वाग्भिः=वाङ्मात्रेणैव । भिद्यते=पलायते, निग्रहीतुं शक्यते वा ॥ १११ ॥ भेर्यादिः=वाद्य-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उक्तञ्च—

अत्युत्कटे च रौद्रे च शत्रौ प्राप्ते न हीयते ।
धैर्यं यस्य महीनाथो न स याति पराभवम् ॥ ११२ ॥
दर्शितभयेऽपि धातरि धैर्यध्वंसो भवेन्न धीराणाम् ।
शोषितसरसि निदाघे नितरामेवोद्धतः सिन्धुः ॥ ११३ ॥

तथा च—

यस्य न विपदि विषादः,
सम्पदि हर्षो, रणे न भीरुत्वम् ।
तं भुवनत्रयतिलकं
जनयति जननी सुतं विरलम् ॥ ११४ ॥

तथा च—शक्तिवैकल्यनम्रस्य निःसारत्वाल्लघीयसः ।
जन्मिनो मानहीनस्य तृणस्य च समा गतिः ॥ ११५ ॥

अपि च—अन्यप्रतापमासाद्य यो दृढत्वं न गच्छति ।
जतुजाऽऽभरणस्येव रूपेणापि हि तस्य किम् ? ॥ ११६ ॥

तदेवं ज्ञात्वा स्वामिना धैर्याऽवष्टम्भः कार्यः,न शब्दमात्राद्धेतव्यम् ।

भेदः । तेषां भेदेन शब्दोऽपि नानाविध इत्यर्थः । अत्युत्कटे=बलीयसि, साहसपरे, रौद्रे=क्रूरतरे च । 'अत्युत्कटे च रौद्रे च शत्रौ यस्य न हीयते । धैर्यं प्राप्ते महीपस्ये'ति–पाठान्तरम् ॥ ११२ ॥ धातरि=जगन्नियन्तरि विधौ । दर्शितं भयं येन तस्मिन्–दर्शितभये=प्रतिकूले-संत्रासयति सत्यपि । निदाघे=ग्रीष्मसमये । सिन्धुः =समुद्रः ॥११३॥ शक्तिवैकल्येन=शक्त्यभावात् । नम्रस्य=प्रणतस्य । अन्तःसारशून्यतया लघीयसः=क्षुद्रस्य, मानहीनस्य । जन्मिनः=शरीरिणः । तृणस्य च तुल्यता ॥ ११५॥ जतुजाभरणस्य=लाक्षानिर्मिताऽऽभूषणस्य । ('लाख का बना गहना' 'नकली गहना') । रूपेण=संघटनाविशेषेण । (बाहरी नकली तड़क भड़क से) । किं ?=न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः ॥ ११६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पूर्वमेव मया ज्ञातं पूर्णमेतद्धि मेदसा ।
अनुप्रविश्य विज्ञातं यावच्चर्म च दारु च ॥ ११७ ॥

पिङ्गलक आह—'कथमेतत् ?' । सोऽब्रवीत्—

२. गोमायुदुन्दुभिकथा ।

कश्चिद् गोमायुर्नाम शृगालः क्षुत्क्षामकण्ठ इतस्तत आहारक्रियार्थं परिभ्रमन्वने सैन्यद्वयसङ्ग्रामभूमिमपश्यत् । तस्याञ्च दुन्दुभेः पतितस्य वायुवशाद्वल्लीशाखाग्रैर्हन्यमानस्य शब्दमशृणोत्

अथ क्षुभितहृदयश्चिन्तयामास-'अहो ! विनष्टोऽस्मि, तद्यावन्नाऽस्य प्रोच्चारितशब्दस्य दृष्टिगोचरं गच्छामि, तावदन्यतो व्रजामि । अथवा नैतद्युज्यते सहसैव—

भये वा यदि वा हर्षे सम्प्राप्ते यो विमर्शयेत् ।
कृत्यं न कुरुते वेगान्न स सन्तापमाप्नुयात ॥ ११८ ॥

तत्तावज्जानामि कस्याऽयं शब्दः (इति)। इत्थं धैर्यमालम्ब्य विमर्शयन् यावन्मन्दं-मन्दं गच्छति तावद्दुन्दुभिमपश्यत् ।

स च तं परिज्ञाय समीपं गत्वा स्वयमेव कौतुकादताडयत् ।

भूयश्च हर्षादचिन्तयत्-'अहो ! चिरादेतदस्माकं महद्भोजनमापतितं, तन्नूनं प्रभूतमांसमेदोऽसृग्भिः परिपूरितं भविष्यति ।' ततः परुषचर्मावगुण्ठितं तत्कथमपि विदार्यैकदेशे छिद्रं कृत्वा संहृष्टमना मध्ये प्रविष्टः । परं चर्मविदारणतो दंष्ट्राभङ्गः समजनि ।

यावत् = साकल्येन । क्षुधा क्षामः-क्षीणः-शुष्कः कण्ठो यस्यासौ-क्षुत्क्षामकण्ठः = क्षुधातृषार्त्तः । दुन्दुभेः=वाद्यभेदस्य = ('नगाड़ा) । वल्लीभिः = लताभिः, शाखाग्रैश्च । हन्यमानस्य = ताड्यमानस्य । विनष्टः = मृतोऽस्मि नूनम् । प्रकर्षेण उच्चारितः शब्दो येनासौ तस्य = शब्दायमानस्य सत्त्वस्य । विमर्शयेत् = विचारयेत् । वेगात्कृत्यं न कुरुते ॥ ११८ ॥ प्रभूतैः = बहुलैः । असृक = रुधिरम् । परुषेण-कठिनेन चर्मणा, अवगुण्ठितं = समाच्छादितं, तत् = वाद्यभाण्डं । दंष्ट्राभङ्गः = दन्तभङ्गः । ('दाढ' 'जाड़' 'तीखे दाँत' 'नेश') । दारुशेषं = काष्ठमात्रा-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ निराशीभूतस्तद्दारुशेषमवलोक्य श्लोकमेनमपठत्—

'[1]श्रुत्वैव भैरवं शब्दं मन्येऽहं मेदसां निधिम् ।
अनुप्रविश्य विज्ञातं यावच्चर्म च दारु च ॥'

प्रतिनिर्गत्याऽन्तर्लीनमवहस्याऽब्रवीत्–'पूर्वमेव मया ज्ञातम्'–इति । अतोऽहं ब्रवीमि—न शब्दमात्राद्भेतव्यम् ।

पिङ्गलक आह—'भोः ! पश्याऽयं मम सर्वोपि परिग्रहो भयव्याकुलितमनाः पलायितुमिच्छति, तत्कथमहं धैर्यावष्टम्भं करोमि ? ।'

सोऽब्रवीत्–स्वामिन् ! नैतेषामेष दोषः । यतः स्वामिसदृशा एव भवन्ति भृत्याः ।

उक्तञ्च— अश्वः शस्त्रं शास्त्रं वीणा वाणी नरश्च नारी च ।
पुरुषविशेषं प्राप्ता भवन्त्ययोग्याश्च योग्याश्च ॥११९॥

तत्पौरुषाऽवष्टम्भं कृत्वा त्वं तावदत्रैव प्रतिपालय, यावदहमेतच्छब्दस्वरूपं ज्ञात्वाऽऽगच्छामि, ततः पश्चाद्यथोचितं कार्यमिति ।

पिङ्गलक आह—'किन्तत्र भवान् गन्तुमुत्सहते ? ।'

स आह—

'किं स्वाम्यादेशात्सुभृत्यस्य कृत्यमकृत्यमस्ति किञ्चित् ? ।

उक्तञ्च— स्वाम्यादेशात्सुभृत्यस्य न भीः संजायते क्वचित् ।
प्रविशेन्मुखमाहेयं, दुस्तरं वा महार्णवम् ॥१२०॥

ऽवशिष्टं । चर्मणो विदारितत्वात् । परिग्रहः = अनुयायिवर्गः । स्वामिसदृशाः = राजानुरूपाः । पुरुषविशेषं—योग्यमयोग्यञ्च प्राप्य । योग्यं प्राप्य योग्याः, अयोग्यं प्राप्य अयोग्याश्च भवन्तीत्याशयः ॥ ११९ ॥

सुभृत्यस्य–स्वाम्यादेशात्=दुष्करमपि राजानुशासनं निशम्य, भयं न जायते । स एव हि सुभृत्यः । अहेः=सर्पस्येदम्–आहेयं=मुखं, दुस्तरं समुद्रं वा प्रविशेत् । सम्भावनायां लिङ् । 'प्रविशेद्भव्यवाहेऽपी' त्यपि पाठः ॥ १२० ॥ समं = सरलं,

---

१ 'श्रुत्वैवम्' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा च—

स्वाम्यादिष्टस्तु यो भृत्यः समं विषममेव च ।
मन्यते, न स सन्धार्यो भूभुजा भूतिमिच्छता ॥१२१॥

पिङ्गलक आह–'भद्र ! यद्येवं तद्गच्छ, शिवास्ते पन्थानः सन्तु—इति । दमनकोऽपि तं प्रणम्य सञ्जीवकशब्दानुसारी प्रतस्थे ।

अथ दमनके गते भयव्याकुलमनाः पिङ्गलकश्चिन्तयामास—'अहो ! न शोभनं कृतं मया यत्तस्य विश्वासं गत्वाऽऽत्माऽभिप्रायो निवेदितः । कदाचिद्दमनकोऽयमुभयवेतनत्वान्ममोपरि दुष्टबुद्धिः स्याद्, भ्रष्टाधिकारत्वाद्वा ।

उक्तञ्च—

ये भवन्ति महीपस्य संमानित-विमानिताः ।
यतन्ते तस्य नाशाय कुलीना अपि सर्वदा ॥१२२॥

तत्तावदस्य चिकीर्षितं वेत्तुं स्थानान्तरं गत्वा प्रतिपालयामि, कदाचिद्दमनकस्तमादाय मां व्यापादयितुमिच्छति ।

उक्तञ्च—

न बध्यन्ते ह्यविश्वस्ता बलिभिर्दुर्बला अपि ।
[1]विश्वस्तास्त्वेव बध्यन्ते बलवन्तोऽपि दुर्बलैः ॥१२३॥

विषमं = कठिनमसम्भवि च न मन्यते स सन्धार्यः = निकटे संस्थाप्यः ॥१२१॥

उभयत्र वेतनं, यस्यासौ तथा । शत्रुपक्षात्स्वपक्षाच्च गृहीतवेतनः—उभयत्र भृत्यत्वमास्थितः, तस्य भावस्तत्त्वात् । पूर्वं संमानिताः, पश्चाद्विमानिताः, भ्रष्टाधिकाराः । तस्य = राज्ञः । कुलीनाः = सत्कुलप्रसूताः, कुलक्रमागताश्च ॥ १२२ ॥

तं = मच्छत्रुं । व्यापादयितुं=निहन्तुम् । विश्वासमुपगता बलिनोऽपि–निर्बलैः–बध्यन्ते = हन्यन्ते ॥ १२३ ॥ बृहस्पतेरपि = सुरगुरोरपि, तत्तुल्यबुद्धेर्देवगुरुतुल्य-

---

१ 'विश्वस्तास्तु प्रबध्यन्ते' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बृहस्पतेरपि प्राज्ञो न विश्वासं व्रजेन्नरः ।
य इच्छेदात्मनो वृद्धिमायुष्यं च सुखानि च ॥१२४॥
शपथैः सन्धितस्यापि न विश्वासं व्रजेद्रिपोः ।
राज्यलाभोद्यतो वृत्रः शक्रेण शपथैर्हतः ॥१२५॥
न विश्वासं विना शत्रुर्देवानमपि सिध्यति ।
विश्वासात्त्रिदशेन्द्रेण दितेर्गर्भो विदारितः ॥ १२६ ॥

एवं सम्प्रधार्य स्थानान्तरं गत्वा दमनकमार्गमवलोकयन्नेकाकी तस्थौ।

दमनकोऽपि सञ्जीवकसकाशं गत्वा 'वृषभोऽय'मिति परिज्ञाय हृष्टमना व्यचिन्तयत्—'अहो ! शोभनमापतितम् , अनेनैतस्य सन्धिविग्रहद्वारेण मम पिङ्गलको वश्यो भविष्यती'ति ।

उक्तञ्च—

न कौलीनान्न सौहार्दान्नृपो वाक्ये प्रवर्तते ।
मन्त्रिणां यावदभ्येति व्यसनं शोकमेव च ॥ १२७ ॥
सदैवाऽऽपद्गतो राजा भोग्यो भवति मन्त्रिणाम् ।
अत एव हि वाञ्छन्ति मन्त्रिणः साऽऽपदं नृपम् ॥१२८॥

प्रभावस्यापि च, न विश्वासं व्रजेत् । यद्वा 'नीतिविदो बृहस्पतेरपि एतन्मतमस्ति यत्—कस्यापि विश्वासो न कार्य' इतीत्यर्थः । सन्धितस्य = उत्पादितविश्वासस्य । राज्यलाभोद्यतः = ऐन्द्रपदाभिलाषः । वृत्रः—इन्द्रेण शपथैर्विश्वासं ग्राहयित्वाऽवसरे हतः । 'लोभोद्यत' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १२५ ॥

सिध्यति=वशं गच्छति ॥ १२६ ॥ सम्प्रधार्य=निश्चित्य । शोभनमापतितं=युक्तं जातम् । ('अच्छा हुआ' अच्छा मौका हाथ आया) । अनेन=वृषभेण । एतस्य=सिंहस्य । सन्धिविग्रहद्वारेण=मैत्री–युद्धादिप्रसङ्गेन । कौलीन्यात्=सत्कुलप्रसूतत्वान्मन्त्रिणाम् । सौहार्दात्=मन्त्रिणां सुहृद्भावेन वा, वाक्ये न प्रवर्त्तते=तेषां वाक्यं नानुसरति । व्यसनं=विपत्तिम् ॥ १२७ ॥ भोग्यो भवति=वशे तिष्ठति । नीरोगः=स्वस्थः ॥ १२९ ॥ स्वाकारं रक्षन्=स्वमनो-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यथा वाञ्छति[1] नीरोगः कदाचिन्न[2] चिकित्सकम् ।
तथाऽऽपद्रहितो राजा सचिवं नाऽभिवाञ्छति ॥ १२९ ॥

एवं विचिन्तयन्पिङ्गलकाऽभिमुखः प्रतस्थे। पिङ्गलकोऽपि तमायान्तं प्रेक्ष्य स्वाकारं रक्षन् यथापूर्वमवस्थितः।

दमनकोऽपि पिङ्गलकसकाशं गत्वा प्रणम्योपविष्टः।

पिङ्गलक आह–'किं दृष्टं भवता तत्सत्त्वम् ?'।

दमनक आह–'दृष्टं स्वामिप्रसादात्।' पिङ्गलक आह–'अपि सत्यम् ?'। दमनक आह–'किं स्वामिपादानामग्रेऽसत्यं विज्ञाप्यते' !

उक्तञ्च––

अपि स्वल्पमसत्यं यः पुरो वदति भूभुजाम् ।
देवानाञ्च, विनश्येत स द्रुतं सुमहानपि ॥ १३० ॥

तथा च––

सर्वदेवमयो राजा मनुना सम्प्रकीर्तितः ।
तस्मात्तं देववत्पश्येन्न व्यलीकेन कर्हिचित् ॥ १३१ ॥
सर्वदेवमयस्याऽपि विशेषो नृपतेरयम् ।
शुभाऽशुभफलं सद्यो नृपाद्देवाद्भवान्तरे ॥ १३२ ॥

पिङ्गलक आह–'अथवा सत्यं दृष्टं भविष्यति भवता, न दीनोपरि महान्तः कुप्यन्ति, अतो न त्वं तेन निपातितः। यतः–

भावं गूहमानः, निर्भयमिवात्मानं दर्शयन्। यथापूर्वं=चतुर्मण्डलव्यूहेन। स्वामिप्रसादात्=भवत्प्रतापेनानुग्रहेण च। अपि सत्यम् ?=किं सत्यमुच्यते भवता एतत्। ('क्या यह सच है' ?)। स्वामिपादानां=मान्यानां प्रभूणाम्। देवानां=देवतानां, भूभुजां=राज्ञां च पुरतोऽल्पमपि असत्यं वदन् द्रुतं=शीघ्रं, विनश्यतीत्यर्थः ॥१३०॥ तं=राजानं, व्यलीकेन=वैपरीत्येन, दुष्टभावेन ॥१३१॥

नृपात्सद्य इहैव च फलं, देवात्तु भवान्तरे=जन्मान्तरे, नरकस्वर्गादिरूपं फलं भवति। एवञ्च देवादपि महान् भूपतिरित्याशयः ॥ १३२ ॥

---

१ 'यथा नेच्छति' इति पा०। २ 'कदाचित् सुचिकित्सकम्'। पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तृणानि नोन्मूलयति प्रभञ्जनो मृदूनि नीचैः प्रणतानि सर्वतः ।
स्वभाव एवोन्नतचेतसामयं 'महान्महत्स्वेव करोति विक्रमम्' ॥१३३॥

अपिच—गण्डस्थलेषु मदवारिषु बद्धराग–
मत्तभ्रमद्भ्रमरपादतलाऽऽहतोऽपि ।
कोपं न गच्छति नितान्तबलोऽपि नाग–
स्तुल्ये बले तु बलवान्परिकोपमेति ॥ १३४ ॥

दमनक आह–'अस्त्वेवं स महात्मा, वयं कृपणाः, तथापि स्वामी यदि कथयति ततो भृत्यत्वेन (तं) [1]योजयामि !' ।

पिङ्गलक आह सोच्छ्वासं–'किं भवाञ्छक्नोत्येवं कर्तुम् ? ।

दमनक आह–किमसाध्यं बुद्धेरस्ति ? ।'

उक्तञ्च—न तच्छस्त्रैर्न नागेन्द्रैर्न हयैर्न पदातिभिः ।
कार्यं संसिद्धिमभ्येति यथा बुद्ध्या प्रसाधितम् ॥ १३५ ॥

पिङ्गलक आह–'यद्येवं तर्ह्यमात्यपदेऽध्यारोपितस्त्वम् । अद्य प्रभृति प्रसाद-निग्रहादिकं त्वयैव कार्यमिति निश्चयः ।'

दीनोपरि=तुच्छजनोपरि । तेन=महता तेन सत्त्वेन । प्रभञ्जनः=वायुः, सर्वतोभावेन प्रणतानि तृणानि न उन्मूलयति, स्तब्धान् वृक्षांस्तु नाशयति । उन्नतचेतसां=महताम् । महत्सु विक्रमदर्शनं स्वभावः=प्रकृतिः ॥ १३१ ॥

गण्डस्थले प्रवहत्सु मदवारिष्वेषु बद्धो रागः=स्पृहा यैस्तेषां मत्तानां भ्रमतां भ्रमराणां पादतलैराहतोऽपि=ताडितोऽपि, नितान्तबलोऽपि=महाबलोऽपि, नागः=कुञ्जरो, न कोपं गच्छति=भ्रमरोपरि न क्रुध्यति । बलवान् हि तुल्यबले एव कोपमधिगच्छतीत्याशयः ॥ १३४ ॥ महात्मा=बलीयान् । कृपणाः=दीनाः । योजयामि । 'त'मिति शेषः । सोच्छ्वासं=दीर्घं श्वासं विमुच्य ।—आह=जगाद । पदातयः=पादचारिणः सैनिकाः ॥ १३५ ॥ प्रसादनिग्रहादिकं=पारितोषिकदान-

---

१ 'भृत्यत्वे नियोजयामि'–इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ दमनकः सत्वरं गत्वा सञ्जीवकं साक्षेपमाहूतवान्—'ऐह्येहीतो दुष्टवृषभ !, स्वामी पिङ्गलकस्त्वामाकारयति, किं निःशङ्को भूत्वा मुहुर्मुहुर्नर्दसि वृथे'ति। तच्छ्रुत्वा सञ्जीवकोऽब्रवीत्–'भद्र ! कोऽयं पिङ्गलकः ?।'

दमनक आह–(सविस्मयं)–किं स्वामिनं पिङ्गलकमपि न जानासि ?। पुनश्च सामर्षमाह–क्षणं प्रतिपालय, फलेनैव ज्ञास्यसि। नन्वयं सर्वमृगपरिवृतो वटतले स्वामी पिङ्गलकनामा सिंहस्तिष्ठति।'

तच्छ्रुत्वा गतायुषमिवाऽऽत्मानं मन्यमानः सञ्जीवकः परं विषादमगमत्। आह च–'भद्र ! भवान् साधुसमाचारो, वचनपटुश्च दृश्यते, तद्यदि मामवश्यं तत्र नयसि–तदभयप्रदानेन स्वामिनः सकाशात्प्रसादः कारयितव्यः।'

दमनक आह–'भोः ! सत्यमभिहितं भवता, नीतिरेषा। यतः—

पर्यन्तो लभ्यते भूमेः समुद्रस्य गिरेरपि।
न कथञ्चिन्महापस्य चित्ताऽन्तः केनचित्क्वचित् ॥ १३६ ॥

तत्त्वमत्रैव तिष्ठ, यावदहं तं समये [1]धृत्वा ततः पश्चात्त्वामानयामी'ति[2]। तथाऽनुष्ठिते दमनकः पिङ्गलकसकाशं गत्वेदमाह–स्वामिन् !

वधबन्धनादिकम्। प्रसादः=पारितोषिकवितरणं। निग्रहः=दण्डपातनम्। निश्चयः—'ममे'ति शेषः।

अथ=सिंहप्रतिज्ञानन्तरम्। साक्षेपं=सभर्त्सनम्। तं=वृषभम्। इदम्=इत्थम्। इतः=इह (यहाँ)। आकारयति=आह्वयति। नर्दसि=शब्दं करोषि। भद्र !=साधो। ('भाई' 'भले आदमी')। क्षणं=किञ्चित्कालं। प्रतिपालय=स्थिरो भव। ननु=निश्चये। 'प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे ननु' इत्यमरः। मृगाः=वन्यजन्तवः। साधुसमाचारः=सज्जनोचितव्यवहारशीलः। प्रसादः=अनुग्रहः। एषा=वक्ष्यमाणा 'राज्ञो विश्वासो न कार्य' इत्येवंरूपा। पर्यन्तः=प्रान्तभागः, चित्तान्तः=हृद्गतो भागः। क्वचित्=कुत्रचिदपि॥ न प्राकृतं=न साधारणं,

---

१ समये धृत्वा=अभयवचनमादाय। 'दृष्ट्वे'तिपाठान्तरम्।

२ 'त्वां नयामीति' पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न तत्प्राकृतं सत्त्वम्। स हि भवतो महेश्वरस्य वाहनभूतो वृषभ इति। मया पृष्ट इदमूचे–'महेश्वरेण परितुष्टेन कालिन्दीपरिसरे शष्पाग्राणि भक्षयितुं समादिष्टः। किं बहुना,—मह्यं प्रदत्तं भगवता क्रीडार्थं वनमिदम्।'

पिङ्गलक आह–सभयम्–'सत्यं ज्ञातं मयाऽधुना, न देवताप्रसादं विना शष्पभोजिनो व्यालाकीर्णे एवंविधे वने निःशङ्कं नर्दन्तो भ्रमन्ति'। ततस्त्वया किमभिहितम् ?।'

दमनक आह–'स्वामिन्! एतदभिहितं मया यदेतद्वनं चण्डिकावाहनभूतस्य मत्स्वामिनः पिङ्गलकनाम्नः सिंहस्य विषयीभूतम्, तद्भवानभ्यागतः प्रियोऽतिथिः। तत्तस्य सकाशं गत्वा भ्रातृस्नेहेनैकत्र भक्षणपानविहरणक्रियाभिरेकस्थानाश्रयेण कालो नेयः'–इति। ततस्तेनापि सर्वमेतत्प्रतिपन्नम्। उक्तञ्च सहर्षम्–'स्वामिनः सकाशादभयदक्षिणा दापयितव्या'–इति। तदत्र स्वामी प्रमाणम्।

तच्छ्रुत्वा पिङ्गलक आह–'साधु सुमते! साधु' मन्त्रिश्रोत्रिय! साधु! मम हृदयेन सह संमन्त्र्य भवतेदमभिहितम्। तद्दत्ता मया तस्याऽभय-

---

किन्तु दिव्यं, तदेवाह–सहीति। सः=सत्त्वं। वृषभः। विधेयगतलिङ्गोपादानात्पुंस्त्वमत्र। मया=दमनकेन। पृष्टः=गर्जनकारणं पृष्टः स वृषभः। इदं=वक्ष्यमाणम्। परितुष्टेन=प्रसन्नेन। कालिन्दीपरिसरे=यमुनाकूले। शष्पाग्राणि=कोमलघासाङ्कुराग्राणि। किं बहुना भाषणेन—अस्य वनस्य प्रभुरहमेव शम्भुना कृतोऽस्मि।–'इदमाहे'ति पूर्वेण सम्बन्धः।

शष्पभोजिनः=घासभोजिनो बलीवर्दादयः। व्यालाकीर्णे=हिंस्रजन्तुभिः परिपूर्णे। एवंविधे=अतिगहने। ततः=वृषभवचनश्रवणानन्तरं। चण्डिकावाहनभूतस्य=दुर्गावाहनस्य सिंहस्य। विषयीभूतम्=अधिकारान्तर्गतम्। तस्य=सिंहस्य। सकाशं=समीपं। कालो नेयः=समयो यापनीयः। प्रतिपन्नं=स्वीकृतम्। उक्तञ्च=स्वीकृत्य पुनरुक्तञ्च। स्वामिनः=सिंहस्य। अभयमेव दक्षिणा–दापयितव्या। 'मह्य'मिति शेषः। सुमते=सुबुद्धे! दमनक! साधु=शोभनं त्वया कृतम्। हृदयेन सह संमन्त्र्य=मदीयेन मनसा सहाऽऽलापं कृत्वेव। मया यदभिधेयं तदेव त्वयोक्त-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दक्षिणा। परं सोऽपि मदर्थेऽभयदक्षिणां याचयित्वा द्रुततरमानीयताम्–इति।

अथ साधु चेदमुच्यते—

अन्तःसारैरकुटिलैरच्छिद्रैः सुपरीक्षितैः।
मन्त्रिभिर्धार्यते राज्यं, सुस्तम्भैरिव मन्दिरम् ॥१३७॥

तथा च—

मन्त्रिणां भिन्नसन्धाने, भिषजां सान्निपातिके।
कर्मणि व्यज्यते प्रज्ञा, स्वस्थे को वा न पण्डितः ? ॥१३८॥

दमनकोऽपि तं प्रणम्य सञ्जीवकसकाशं प्रस्थितः सहर्षमचिन्तयत्, अहो ! प्रसादसंमुखीनः स्वामी, वचनवशगश्च संवृत्तः, तन्नास्ति धन्यतरो मम।

उक्तञ्च—

अमृतं शिशिरे वह्निरमृतं प्रियदर्शनम्।
अमृतं राजसंमानममृतं क्षीरभोजनम् ॥ १३९ ॥

मिति यावत्। तस्य=तस्मै वृषभाय। मदर्थे=मत्कृते।

अन्तःसारैः=ज्ञाननिधिभिः, दृढतरैश्च। अकुटिलैः=सरलाशयैः, अवक्रैश्च। सुपरीक्षितैः=चिरं परीक्षितैः, भारधारणसमर्थैश्च। स्तम्भैः=आधारस्तम्भैः, मन्दिरमिव=भवनमिव–अमात्यै राज्यं धार्यते ॥१३७॥

भिन्नस्य=विरुद्धस्य, भेदं गतस्य च। सन्धाने=सान्त्वने, मेलने च। प्रज्ञा=बुद्धिचातुर्यं, व्यज्यते=अभिज्ञायते। सान्निपातिके कर्मणि=सन्निपातरोगचिकित्सायामेव। भिषजां=वैद्यानां। बुद्धेः परीक्षा भवति। स्वस्थे=प्रकृतिस्थे। साधारणावस्थापन्ने, ज्वरादिचिकित्सारूपे सामान्ये कर्मणि वा। कः पण्डितो न ?, अपि तु सर्व एव साधारणोऽपि जनः पण्डित एव (किं पुनर्वैद्यनामधारी) इत्यर्थः॥१३८॥

प्रसादसंमुखीनः=प्रसन्नः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ स सञ्जीवकसकाशमासाद्य सप्रश्रयमुवाच–'भो मित्र [1]प्रार्थितोऽसौ मया भवदर्थे स्वामी, अभयप्रदानं दापितश्च। तद्विश्रब्धं गम्यता'मिति। परं त्वया राजप्रसादमासाद्य मया सह समयधर्मेण वर्तितव्यम्। न गर्वमासाद्य स्वप्रभुतया विचरणीयम्। अहमपि तव सङ्केतेन सर्वां राज्यधुरममात्यपदवीमाश्रित्योद्धरिष्यामि। एवं कृते द्वयोरप्यावयो राज्यलक्ष्मीर्भोग्या भविष्यति।' उक्तञ्च—

आखेटकस्य धर्मेण विभवाः स्युर्वशे नृणाम्।
नृपतान् प्रेरयत्येको हन्त्यन्योऽत्र मृगानिव ॥ १४० ॥

तथा च—यो न पूजयते [2]गर्वादुत्तमा-ऽधम-मध्यमान्।
भूपसंमानमान्योऽपि भ्रश्यते-दन्तिलो यथा ॥ १४१ ॥

सञ्जीवक आह—'कथमेतत् ?।' सोऽब्रवीत्—

सप्रश्रयं=सस्नेहं। 'प्रश्रयप्रणयौ समौ' इत्यमरः। असौ स्वामी-सिंहः—मया भवदर्थम्। अभयप्रदानं प्रार्थितः=याचितः। मिलिता चाऽभयदक्षिणेति यावत्। विस्रब्धं=विस्रम्भसहितं यथा स्यात्तथा। 'समौ विस्रम्भविश्वासौ' इत्यमरः।

समयधर्मेण=प्रतिज्ञानुसारेण। इदानीं याऽऽवयोः शपथादिना प्रतिज्ञापूर्वं मैत्री सञ्जाता, सा त्वया सर्वदा पालनीयेति भावः। गर्वमासाद्य=अभिमानमालम्ब्य। स्वप्रभुतया=स्वातन्त्र्येण। सङ्केतेन=अनुमत्या। राज्यधुरं=राज्यभारम्। उद्धरिष्यामि=आत्मनि धारयिष्यामि।

आखेटकस्य=मृगयायाः। धर्मेण=व्यवहारेण। तद्वत्। नृणां=मनुष्याणां। वशे=प्रभुत्वे। विभवाः=सम्पदः स्युः। मृगयाधर्ममेवाह—नृपतीनिति। नृपतीन्=पशुधर्मणो राज्ञः, धनिनश्च। एकः प्रेरयति=विश्वासं ग्राहयति, स्वलाभप्रदेषु शुभाऽशुभेषु कर्मसु योजयति च। मृगयापक्षे—उत्थापयति। विश्वास्तांश्च, मृगयापक्षे उत्थापितांश्च तानन्यो हन्ति, वञ्चयति, स्वकार्यं साधयति च। तद्वदावाभ्यां राजलक्ष्मीर्भोक्तुं शक्यते, परस्परसाहाय्येनेत्याशयः। 'नृपशू'निति केचित्पठन्ति।१४०।

---

१ 'प्रसादितोऽसौ'। २ 'गर्वाद् यथौचित्यं नृपाश्रितान्। स प्राप्नोति पदभ्रंशं भूपतेर्दन्तिलो यथा ॥' पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३, दन्तिल-गोरम्भ-कथा[1] ।

अस्त्यत्र धरातले वर्द्धमानं नाम नगरम् । तत्र दन्तिलो नाम नानाभाण्डपतिः सकलपुरनायकः प्रतिवसति स्म । तेन पुरकार्यं, नृपकार्यं च कुर्वता तुष्टिं नीतास्तत्पुरवासिनो लोका, नृपतिश्च ।

किं बहुना—न कोऽपि तादृक्केनापि चतुरो दृष्टो, नापि श्रुतो वेति । अथवा साधु चेदमुच्यते—

'नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके,
जनपदहितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्रैः' ।
—इति महति विरोधे वर्तमाने, समानो[2]
नृपति-जनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता ॥ १४२ ॥

अथैवं गच्छति काले दन्तिलस्य कदाचित्कन्याविवाहः संप्रवृत्तः । तत्र तेन सर्वे पुरनिवासिनो, राजसन्निधिलोकाश्च संमानपुरःसरमामन्त्र्य भोजिताः, वस्त्रादिभिः सत्कृताश्च । ततो विवाहानन्तरं राजा सान्तःपुरः स्वगृहमानीयाऽभ्यर्चितः ।

अथ तस्य नृपतेर्गृहसंमार्जनकर्ता गोरम्भो[3] नाम राजसेवको गृहायातोऽपि तेनानुचितस्थाने उपविष्टोऽवज्ञयाऽर्द्धचन्द्रं दत्त्वा निःसारितः ।

नानाभाण्डपतिः=राजकीयगोष्ठागारधनागाराध्यक्षः । ['भण्डारी' 'खजांची'] । सकलपुरनायकः = नागरिकजननिवहप्रधान । ('पञ्च' 'मुखिया') । तादृक् = दन्तिलतुल्यः । नरपतीति । जनपदानां = लोकानां । 'भवेज्जनपदो जानपदोऽपि जनदेशयो'रिति विश्वः । हितकर्त्ता=कल्याणकर्त्ता ॥ १४२ ॥

राजसन्निधिलोकाः=राजसेवकाः । राजपुरुषाः । अन्तःपुरेण सहितः—सान्तःपुरः=सपुत्रकलत्रः । अभ्यर्चितः=पूजितः । सत्कृतश्च । अनुचितस्थाने=स्वायोग्ये उच्चपदे । अवज्ञया=अपमानेन । अर्धचन्द्रं=गलहस्तं दत्वा ।

---

१. कथेयमश्लीलत्वात्काशिकपरीक्षापाठ्यग्रन्थबहिर्भूता ।

२. 'समाने' । ३. 'गोरम्भनामा' ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सोऽपि ततः प्रभृति निःश्वसन्नपमानान्न रात्रावप्यधिशेते। 'कथं मया तस्य भाण्डपतेः राजप्रसादहानिः कर्तव्ये' ति चिन्तयन्नास्ते।

अथवा किमनेन वृथा शरीरशोषणेन ?। न किञ्चिन्मया तस्याऽपकर्तुं शक्यमिति। अथवा साध्विदमुच्यते—

यो ह्यपकर्तुमशक्तः कुप्यति किमसौ [1]नरोऽत्र निर्लज्जः ?।
उत्पतितोऽपि हि चणकः शक्तः किं भ्राष्ट्रकं भङ्क्तुम् ?॥१४३॥

अथ (स) कदाचित्प्रत्यूषे योगनिद्रां गतस्य राज्ञः शय्याऽन्ते माजनं कुर्वन्निदमाह—'अहो ! दन्तिलस्य महद्दृप्तत्वं यद्राजमहिषीमालिङ्गति।' तच्छ्रुत्वा राजा ससम्भ्रममुत्थाय तमुवाच—'भो भो गोरम्भ ! सत्यमेतद्यत्त्वया जल्पितम् ?, किं देवी दन्तिलेन समालिङ्गिता ?।' इति।

गोरम्भः प्राह—'देव ! रात्रिजागरणेन द्यूताऽऽसक्तस्य मे बलान्निद्रा समायाता, तन्न वेद्मि किं मयाऽभिहितम् ?।'

राजा सेर्ष्यं स्वगतम् [[2]अचिन्तयत्]—'एष तावदस्मद्गृहेऽप्रतिहतगतिः, तथा दन्तिलोऽपि। तत्कदाचिदनेन देवी समालिङ्ग्यमाना दृष्टा भविष्यति; तेनेदमभिहितम्।

उक्तञ्च—

यद्वाञ्छति दिवा मर्त्यो, वीक्षते वा, करोति वा।
तत्स्वप्नेऽपि तदभ्यासाद् ब्रूते वाऽथ करोति वा॥ १४४॥

(गर्दनिया देकर)। सोऽपि=गोरम्भोऽपि। भाण्डपतेः=अर्थपतेः। ['राजभण्डारी'] राजप्रसादहानिः=राजानुग्रहभङ्गः। अपकर्तुं=विहन्तुम्। असौ=निर्लज्जो जनः। किम=किमर्थं कुप्यति ? उत्पतितोऽपि=ऊर्ध्वं प्लुतोऽपि। भ्राष्ट्रकम्=अम्बरीषम्। (भाड)। ['चना उछलकर भाड़ को नहीं फोड़ सकता'] ॥१४३॥ प्रत्यूषे—प्रभाते, योगनिद्राम्=अप्रगाढनिद्राम्। ध्यानावस्थां वा। (योगनिद्रा=सचेत निद्रा)। शय्यान्ते = पर्यङ्कसमीपे। दृप्तत्वं=धृष्टत्वम्। अप्रतिहता गतिर्यस्यासौ

---

१. 'स तस्य निर्लज्जः' पा०। २. क्वचिन्न।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा च—

शुभं वा, यदि वा पापं, यन्नृणां हृदि संस्थितम् ।
सुगूढमपि तज्ज्ञेयं स्वप्नवाक्यात्तथा मदात् ॥ १४५ ॥

अथवा स्त्रीणां विषये कोऽत्र सन्देहः—

जल्पन्ति साद्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः ।
हृद्गतं चिन्तयन्त्यन्यं—प्रियः को नाम योषिताम् ! ॥ १४६ ॥

अन्यच्च—

एकेन स्मितपाटलाधररुचो जल्पन्त्यनल्पाक्षरं,
वीक्षन्तेऽन्यमितः स्फुटत्कुमुदिनीफुल्लोल्लसल्लोचनाः ।
दूरोदारचरित्रचित्रविभवं ध्यायन्ति चान्यं धिया,
केनेत्थं परमार्थतोऽर्थवदिव प्रेमाऽस्ति वामभ्रुवाम् ? ॥ १४७ ॥

तथा=अवारितगमनः । सुगूढं=रहस्यभूतमपि, स्वप्नवाक्यं=सुप्तप्रलापः, मदात्=मद्यादिमदात् ['नशा'] ॥ १४५ ॥

जल्पन्तीति । अन्येन सह भाषन्ते, अन्यं कटाक्षादिविभ्रमैः पश्यन्ति, हृदि च अन्यं चिन्तयन्ति, स्वभावचञ्चलाः स्त्रियस्तासां को नामप्रियः । न कोऽपीत्यर्थः ॥ १४६ ॥

अमुमेवार्थं भङ्ग्यन्तरेणाह—एकेनेति । स्मितेन पाटला अधरस्य रुक् यासां ताः, स्मितपाटलाधररुचः=ईषद्धासपाटलिताधराः । स्मिता=विकसिता या पाटला ('गुलाब का फूल), तस्या इव अधरस्य रुक् यासान्ता इति वा विग्रहः । अनल्पाक्षरं=बहुलं यथा स्यात्तथा । एकेन=केनचित्पुरुषेण । जल्पन्ति=भाषन्ते । इतः=अस्मात् । अन्यं=भिन्नं । स्फुटन्ती चासौ कुमुदिनी च स्फुटत्कुमुदिनी=विकाशिनीलकमललता, सा इव-फुल्लानि अत एव-उल्लसन्ति लोचनानि यासां ताः, स्फुटत्कुमुदिनी—फुल्लो—ल्लसल्लोचनाः=विकसितकमलिनीपुष्पानुकारिफुल्लोल्लासिलोलनयनाः सत्यः । वीक्षन्ते=पश्यन्ति । दूरम्=अत्यन्तम् । उदारं=विशालं, यत् चरित्रं तेन चित्रः=आश्चर्यप्रदः, विभवः=सौन्दर्यादिसम्पत् यस्यासौ तं=सौन्द-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा च—

नाऽग्निस्तृप्यति काष्ठानां, नाऽऽपगानां महोदधिः ।
नाऽन्तकः सर्वभूतानां, न पुंसां वामलोचनाः ॥ १४८ ॥
रहो नास्ति, क्षणो नास्ति, नास्ति प्रार्थयिता नरः ।
तेन नारद ! नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥ १४९ ॥
यो मोहान्मन्यते मूढो 'रक्तेयं मम कामिनी' ।
स तस्या वशगो नित्यं भवेत्क्रीडाशकुन्तवत् ॥ १५० ॥
तासां वाक्यानि कृत्यानि स्वल्पानि सुगुरूण्यपि ।
करोति, यैः कृतैर्लोके लघुत्वं याति सर्वतः ॥ १५१ ॥
स्त्रियश्च यः प्रार्थयते, सन्निकर्षञ्च गच्छति ।
ईषच्च कुरुते सेवां, तमेवेच्छन्ति योषितः ॥ १५२ ॥
अनर्थित्वान्मनुष्याणां, भयात्परिजनस्य च ।

र्यादिगुणनिधिम्-अन्यं । धिया=चेतसा । ध्यायन्ति=चिन्तयन्ति । इत्थम्=इत्थञ्च । परमार्थतः=वस्तुतस्तु । अर्थवदिव=सत्यं नाम । प्रेम=स्नेहः । वामभ्रुवां=विलासिनीनां । केन=केनास्ति ? । तासां केनापि सह सत्यः स्नेहो नास्ति, परं जगद्वञ्चयन्तीमाः कपटस्नेहप्रदर्शनेन केवल मित्याशयः ॥ १४७ ॥

काष्ठानां=काष्ठैः, आपगानां=नदीभिः, तृप्यति=पूर्यते । अन्तकः=कालः, सर्वभूतैर्न तृप्यति। पुंसां=पुरुषैः, वामलोचनाः=प्रमदाः, न तृप्यन्तीत्यर्थः ॥१४८॥

रहः=एकान्तं स्थानं, नास्ति=न लभ्यते । क्षणः=अवसरः । प्रार्थयिता=कामुकः । तेन=तेनैव ॥ १४९ ॥ मोहात्=मौर्ख्यात्, मूढः=मूर्खः, मम=ममोपरि, रक्ता=अनुरक्ता । इत्थं यो मन्यते स तस्याः=प्रमदायाः, क्रीडायाः=शकुन्तः=पक्षी शुकादिः, तद्वत् । ('हाथकी कठपुतली' 'खिलौना') ॥ १५० ॥

लोकः तासां स्वल्पान्यपि वाक्यानि, सुगुरूणि कृत्यानि च करोति । तेन च सर्वतो, लघुत्वं=लाघवं–याति ॥ १५१ ॥

संनिकर्षः=सामीप्यम् । ईषत्=किञ्चिदिव ॥ १५२ ॥ अनर्थित्वादिति ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मर्यादायाममर्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्ति सर्वदा ॥ १५३ ॥
नाऽऽसां कश्चिदगम्योऽस्ति, नाऽऽसाञ्च वयसि स्थितिः ।
विरूपं, रूपवन्तं वा 'पुमा'नित्येव भुञ्जते ॥ १५४ ॥
रक्तो हि जायते भोग्यो नारीणां शाटको यथा ।
घृष्यते यो दशालम्बी नितम्बे विनिवेशितः ॥ १५५ ॥
अलक्तको यथा रक्तो निष्पीड्य पुरुषस्तथा ।
अबलाभिर्बलाद्रक्तः पादमूले निपात्यते ॥ १५६ ॥

एवं स राजा बहुविधं विलप्य तत्प्रभृति दन्तिलस्य प्रसादपराङ्मुखः सञ्जातः । किं बहुना—राजद्वारप्रवेशोऽपि तस्य निवारितः ।

दन्तिलोऽप्यकस्मादेव प्रसादपराङ्मुखमवनिपतिमवलोक्य चिन्तयामास—

अर्थिनां=कामुकानामभावात्, परिजनस्य=बन्धुवर्गादेः, मर्यादायां=कुलधर्मपालने, अमर्यादाः=मर्यादाशून्याः, प्रोद्दामदर्पाः प्रमदाः ॥ १५३ ॥

न वयसि स्थितिः=नाऽवस्थायामास्थाऽस्ति । बालोऽयं, वृद्धोऽयमिति विचारो नास्तीत्यर्थः । 'पुमानय' मित्येव दृष्ट्वा, भुञ्जते=सेवन्ते । यद्वा आसां यौवनवार्धक्ययोर्भेदो नास्तीत्यर्थः ॥ १५४ ॥

रक्त इति । रक्तः=अनुरक्तः, मञ्जिष्ठादिना रक्तश्च । भोग्यः=उपभोगार्हः, धारणयोग्यश्च । शाटकः=वस्त्रविशेषः । ('साड़ी') । यः शाटकः, दशालम्बी=प्रान्तभागावलम्बनः, ('किनारी') । नितम्बे = कटिपश्चाद्भागे, विनिवेशितः-स्थापितः सन्, घृष्यते=घर्षणेन पीड्यते, एवमनुरक्तः पुमानपि नितम्बमारूढः=जघनारूढः, दशालम्बी = कामदशामूढः, पटान्तलग्नश्च । घृष्यते=पीड्यते । नानाविधैर्वाक्यैर्मर्कटवन्निदेशं कार्यते चेत्यर्थः । 'धृष्यते' इत्यपि पाठः ॥ १५५ ॥

यथा रक्तोऽलक्तकः=यावकः, (यावक='महावर' 'मेंहदी' 'अलता') । निष्पीड्य =नितरां पीडयित्वा, अबलाभिः-पादमूले=पादप्रान्ते । निपात्यते=संयोज्यते, निक्षिप्यते च । एवमनुरक्तः पुमानपि प्रमदाभिः पादयोर्निपात्यते=तिरस्क्रियते ॥ १५६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'अहा साधु चदमुच्यते—

कोऽर्थान्प्राप्य न गर्वितो, विषयिणः कस्यापदोऽस्तङ्गताः ?,
स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः, को नाम राज्ञां प्रियः ? ।
कः कालस्य न गोचरान्तरगतः, कोऽर्थी गतो गौरवं, ?
को वा दुर्जनवागुरासु पतितः क्षेमेण यातः पुमान् ? ॥१५७॥

तथा च—

काके शौचं, द्यूतकारे च सत्यं,
सर्पे क्षान्तिः, स्त्रीषु कामोपशान्तिः ।
क्लीबे धैर्यं, मद्यपे तत्त्वचिन्ता,
राजा मित्रं, केन दृष्टं श्रुतं वा ॥ १५८ ॥

अपरं–'मया अन्यभूपतेः (अथवा) अन्यस्यापि कस्यचित् राजसम्बन्धिनः स्वप्नेऽपि नाऽनिष्टं कृतम्, तत्किमिति पराङ्मुखो मां प्रति भूपतिः' ?–इति ।

एवं तं दन्तिलं कदाचिद्राजद्वारे विष्कम्भितं विलोक्य संमार्जनकर्ता गोरम्भो विहस्य द्वारपालानिदमूचे–'भो भो द्वारपालाः ! राजप्रसादाऽधिष्ठितोऽयं दन्तिलः, स्वयं निग्रहाऽनुग्रहकर्ता च । तदनेन निवारितेन यथाऽहं तथा यूयमप्यर्द्धचन्द्रभागिनो भविष्यथ' ।

विलप्य=विलापं कृत्वा । प्रसादपराङ्मुखः=विरक्तः । अर्थान्=धनं, प्राप्य । को न गर्वितः ? । सर्वोपि गर्वितो भवति । विषयिणः=विषयलम्पटस्य कस्य पुंसः, आपदः=विपत्तयः, अस्तङ्गताः=विनष्टाः ? । न कस्यापि । खण्डितं=विकृतिमापादितम् । कालस्य=मृत्योः, गोचरान्तरगतः=विषयीभूतः, अर्थी=याचकः, दुर्जनानां वागुरासु=जालेषु । 'वागुरा मृगबन्धनी'त्यमरः । पतितः=प्रपतितः ('फंसा हुआ') । क्षेमेण=कुशलेन । को यातः=को निर्यातः ? । (कौन निकला है ?) ॥१५७॥

काके=वायसे । शौचं=शुद्धिः । क्षान्तिः=क्षमा । क्लीबे=कातरे । धैर्यं=साहसं । तत्त्वचिन्ता=विवेकः । विष्कम्भितं=द्वारपालैर्निवारितम् ('दर्वाजे पर रोके गये') । राजप्रसादाधिष्ठितः=राजानुगृहीतः । अर्धचन्द्रभागिनः=अनेन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तच्छ्रुत्वा दन्तिलश्चिन्तयामास–'नूनमिदमस्य गोरम्भस्य चेष्टितम्।

अथवा साध्विदमुच्यते—

अकुलीनोऽपि, मूर्खोऽपि, भूपालं योऽत्र सेवते।
अपि संमानहीनोऽपि स सर्वत्र प्रपूज्यते ॥ १५९ ॥
अपि कापुरुषो भीरुः स्याच्चेन्नृपतिसेवकः।
तथापि न पराभूतिं जनादाप्नोति मानवः' ॥ १६० ॥

एवं स बहुविधं विलप्य विलक्षमनाः सोद्वेगो गतप्रभावः स्वगृहं गत्वा निशामुखे गोरम्भमाहूय वस्त्रयुगलेन संमान्येदमुवाच—'भद्र! मया न तदा त्वं रागवशान्निःसारितः। यतस्त्वं ब्राह्मणानामग्रतोऽनुचितस्थाने समुपविष्टो दृष्ट इत्यपमानितः, तत्क्षम्यताम्।'

सोऽपि स्वर्गराज्योपमं तद्वस्त्रयुगलमासाद्य, परं परितोषं गत्वा तमुवाच–'भोः श्रेष्ठिन्! क्षान्तं मया ते तत्, तदस्य [1]संमानस्य कृते पश्य मे बुद्धिप्रभावं, राजप्रसादं च।' एवमुक्त्वा सपरितोषं निष्क्रान्तः।

साधु चेदमुच्यते—

स्तोकेनोन्नतिमायाति स्तोकेनाऽऽयात्यधोगतिम्।
अहो! सुसदृशी चेष्टा तुलायष्टेः, खलस्य च ॥ १६१ ॥

ततश्चाऽन्येद्युः स गोरम्भो राजकुले गत्वा, योगनिद्रां गतस्य भूपतेः

स्वाधिकाराच्च्यावितो भविष्यथ। सोपहासं, सेर्ष्यञ्च वाक्यमेतत्स्वापमानस्मारणाय गोरम्भेण प्रयुक्तम्। इदं=राजविरागजननं। कापुरुषः = नीचः ॥ १६० ॥

विलक्षमनाः=लज्जितः। सोद्वेगः=शोकाकुलः। गतप्रभावः=निग्रहाऽनुग्रहसामर्थ्यरहितः। तदा=कन्याविवाहकाले। रागवशात्=वैरानुबन्धात्, क्रोधाच्च। दृष्टः=मया दृष्टः। तत्=अपमानकारि त्वदीयं चेष्टितम्। उन्नतिं=प्रसन्नताम्, औन्नत्यञ्च। अधोगतिं=वैरं, नीचैर्गतिञ्च। सुसदृशी=नितरां तुल्या। चेष्टा = व्यवहारः। तुलायष्टेः=तुलादण्डस्य। (तराजू)। खलस्य=नीचस्य, पिशुनस्य च ॥ १६१ ॥

---

१ 'अस्य प्रसादस्याऽचरादेव द्रक्ष्यसि राजप्रसादादि फल'मिति लिखिते पाठः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संमार्जनक्रियां कुर्वन्निदमाह—'अहो ! अविवेकोऽस्मद्भूपतेः, यत्पूरीषोत्सर्गमाचरंश्चिर्भटीभक्षणं करोति ।' तच्छ्रुत्वा राजा सविस्मयं तमुवाच—'रे रे गोरम्भ ! किमप्रस्तुतं लपसि ? । गृहकर्मकरं मत्वा त्वां न व्यापादयामि, किं त्वया कदाचिदहमेवंविधं कर्म समाचरन्दृष्टः ?' ।

सोऽब्रवीत्—'देव ! द्यूतासक्ततया रात्रिजागरणेन सम्मार्जनं कुर्वाणस्य मम बलान्निद्रा समायाता, तयाऽधिष्ठितेन मया किंस्विज्जल्पितं, तन्न वेद्मि । तत्प्रसादं करोतु स्वामी मम निद्रापरवशस्य'—इति ।

एवं श्रुत्वा राजा चिन्तितवान्—'यन्मया [1]आजन्मतोऽपि पुरीषोत्सर्गं कुर्वता कदापि चिर्भटिका न भक्षिता । तद्यथाऽयं व्यतिकरोऽसंभाव्यो ममाऽनेन मूढेन व्याहृतः, तथा दन्तिलस्याऽपी'ति निश्चयः । तन्मया न युक्तं कृतं यत्स वराकः संमानेन वियोजितः । न तादृक्पुरुषाणामेवंविधं चेष्टितं संभाव्यते । तदभावेन राजकृत्यानि, पौरकृत्यानि च सर्वाणिशिथिलतां व्रजन्ति' ।

एवमनेकधा विमृश्य[2], दन्तिलं समाहूय, निजाङ्गवस्त्राभरणादिभिः संयोज्य, स्वाधिकारे नियोजयामास । अतोऽहं ब्रवीमि 'यो न [3]पूजयते गर्वात्'—इति ।

सञ्जीवक आह—'भद्र ! एवमेवैतत्, यद्भवताऽभिहितं तदेव मया

अन्येद्युः=अपरदिने । अविवेकः=अनुचितकारित्वं । पुरीषोत्सर्गं=मलोत्सर्गं । चिर्भटीभक्षणं=कर्कटीभक्षणं । ('टट्टी बैठते समय ककड़ी खाता है') । सविस्मयं=साश्चर्यम् । अप्रस्तुतम् = अनुचितं । व्यापादयामि = मारयामि । एवंविधं=मलोत्सर्गसमये चिर्भटीभक्षणं । आजन्मतः = जन्मत आरभ्याऽद्य यावत् । व्यतिकरः=सम्बन्धः । आचारवैपरीत्यं वा (गड़बड़ी) । वराकः = दीनः । ('बेचारा गरीब') । संमानेन=राजसत्कारेण । तदभावेन=दन्तिलागमनविरहेण । पौरकृत्यानि = पुरवासिलोककार्याणि । विमृश्य = विचार्य । एवमेवैतत् = यथा भवानाह तत्तथैव ।

---

१ अत्र 'जन्मान्तरेऽपि' इति पाठस्तु नातीवोचितः । २ 'विनिश्चित्य' ।
३ 'न पूजयति यो गर्वात्' ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर्तव्यम्'–इति । एवमभिहिते दमनकस्तमादाय पिङ्गलकसकाशमगमत् । आह च–'देव ! एष मयाऽऽनीतः स सञ्जीवकः, अधुना देवः प्रमाणम् ।' सञ्जीवकोऽपि तं सादरं प्रणम्याऽग्रतः सविनयं स्थितः ।

पिङ्गलकोऽपि तस्य [२]पीनाऽऽयतककुद्मतो नखकुलिशाऽलङ्कृतं दक्षिण-पाणिमुपरि दत्त्वा संमानपुरःसरमुवाच–अपि शिवं भवतः ?। कुतस्त्वम-स्मिन्वने विजने समायातोऽसि ! । तेनाप्यात्मवृत्तान्तः कथितः, यथा सार्थवाहेन वर्द्धमानेन सह वियोगः सञ्जातस्तथा सर्वं निवेदितम् ।

एतच्छ्रुत्वा पिङ्गलकः सादरतरं तमुवाच–'वयस्य ! न भेतव्यं, मद्भुजपञ्जर[१]परिरक्षितेऽस्मिन् वने यथेच्छं त्वयाऽधुना वर्त्तितव्यम् । अन्यच्च–नित्यं भवता मत्समीपवर्तिना भाव्यं, यतः कारणात् बह्वपायं रौद्रसत्त्वनिषेवितं वनं गुरूणामपि सत्त्वानामसेव्यं, कुतः शष्प-भोजिनाम्' इति ।

एवमुक्त्वा सकलमृगपरिवृतो यमुनाकच्छमवतीर्य प्रकाममुदक-

अभिहिते=उक्ते सति । तं=सञ्जीवकम् । सः=शिवाऽनुचरो बली । अधुना=सम्प्रति करणीयेषु । प्रमाणम्=प्रभुः । अग्रे यत्कर्त्तव्यं तदनुतिष्ठतु भवान् । (आगे आप जैसा उचित समझें करें) । तं=सिंहम् । सविनयं=सादरम् । विनयावनतः । तस्य=सञ्जीवकस्य । पीना=स्थूला, आयता=विपुला च ककुद्यस्यासौ–पीनायतककु-द्मान्, तस्य । 'उपरी' ति सम्बन्धः । 'अथ ककुत् स्त्रियाम्, पुंसि चोक्ष्णः स्कन्ध-देशे' इति केशवः । 'पीनवृत्तायत'मिति पाठे–दक्षिणपाणिविशेषणमेतत् । पीनः=पीवरः (मोटा) । वृत्तः=वर्तुलः । अग्रतः=दीर्घः । नखान्येव कुलिशानि, तैरलङ्कृ-तम् । शिवं-कल्याणम् । विजने=निर्जने । तेन=वृषभेण । पञ्जरः=शलाकागृहं (पिञ्जरा) । (यतःकारणात्=इसलिए कि)-बह्वपायं-विपत्तिबहुलम् । रौद्रैः=क्रूरैः । सत्त्वैः=जन्तुभिः । निषेवितं=परिवृतम्, आश्रितम् । गुरूणां=महतां,=सत्त्वानां—व्याघ्रादीनाम् ।

एवम्=इत्थम् । उक्त्वा=सञ्जीवकायाऽभयवाचं दत्त्वा । सकलमृगपरि-वृतः=सकलपशुगणपरिवृतः । 'मृगः पशौ कुरङ्गे च करि-नक्षत्र-भेदयोः । अन्वेष-

---

१ 'पीनवृत्तायतं' । २ 'परिरक्षितेन' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पानावगाहनं[1] कृत्वा स्वेच्छया पुनस्तदेव वनं प्रविष्टः। ततश्च करटक-दमनकनिक्षिप्तराज्यभारः सञ्जीवकेन सह सुभाषितगोष्ठीमनुभवन्नास्ते। अथवा साध्विदमुच्यते—

यदृच्छयाऽप्युपनतं सकृत्सज्जनसङ्गतम्।
भवत्यजरमत्यन्तं नाऽभ्यासक्रममीक्षते ॥ १६२ ॥

सञ्जीवकेनाप्यनेकशास्त्रावगाहनादुत्पन्नबुद्धिप्रागल्भ्येन स्तोकैरेवाऽहोभिर्मूढमतिः पिङ्गलको धीमान् (तथा–) कृतः (यथा–) अरण्यधर्माद्वियोज्य ग्राम्यधर्मेषु नियोजितः। किं बहुना–प्रत्यहं पिङ्गलकसञ्जीवकावेव केवलं रहसि मन्त्रयतः, शेषः सर्वोऽपि मृगजनो दूरीभूतस्तिष्ठति। करटक-दमनकावपि प्रवेशं न लभेते।

अन्यच्च—सिंहपराक्रमाऽभावात्सर्वोऽपि मृगजनस्तौ च शृगालौ क्षुधाव्याधिबाधिता एकां दिशमाश्रित्य स्थिताः।

उक्तञ्च—

फलहीनं नृपं भृत्याः कुलीनमपि चोन्नतम्।
सन्त्यज्याऽन्यत्र गच्छन्ति शुष्कं वृक्षमिवाऽण्डजाः ॥ १६३ ॥

णायां याञ्चाया' मिति विश्वः। सुभाषितगोष्ठीसुखं=काव्यालापगोष्ठीसुखम् ॥

यदृच्छयेति। यदृच्छया=अकस्मात्। उपनतं=प्राप्तं। सकृत्=एकवारम्। सज्जन-सङ्गतं=सज्जनसङ्गमः। अत्यन्तं=नितराम्। अजरं—दृढम् भवति। अभ्यासक्रमं=पौनःपुन्येन सङ्गतम्। नेक्षते=न प्रतीक्षते ॥ १६२ ॥

अनेकशास्त्रावगाहनात्=नानाशास्त्राभ्यासात्। स्तोकैः=अल्पैः। मूढमतिः=मूर्खः। पिङ्गलकः=तन्नामा स सिंहः। धीमान्=विवेकी। अरण्यधर्मात्=पशुवधादेः। ग्राम्यधर्मेषु=दयाकारुण्यादिषु। बहुना गदितेन किं प्रयोजनं। संक्षिप्य कथयामीत्यर्थः। रहसि=विजने। मृगजनः=व्याघ्रवृकादिः। क्षुधारूपेण व्याधिना=रोगेण। बाधिताः=पीडिताः। एकां दिशम्=एकस्मिन् प्रदेशे। अण्डजाः=पक्षिणः ॥ १६३ ॥

---

१ 'उदकग्रहणं'।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा च–

अपि संमानसंयुक्ताः कुलीना भक्तितत्पराः ।
वृत्तिभङ्गान्महीपालं त्यजन्त्येव हि सेवकाः ॥ १६४ ॥

अन्यच्च––

कालाऽतिक्रमणं वृत्तेर्यो न कुर्वीत भूपतिः ।
कदाचित्तं न मुञ्चन्ति भर्त्सिता अपि सेवकाः ॥ १६५ ॥

तथा—न केवलं सेवका इत्थंभूता—यावत्समस्तमप्येतज्जगत् परस्परं भक्षणार्थं सामादिभिरुपायैस्तिष्ठति ।

तद्यथा––

देशानामुपरि [1]क्ष्मापा, आतुराणां चिकित्सकाः ।
वणिजो ग्राहकाणां च, मूर्खाणामपि पण्डिताः ॥ १६६ ॥
प्रमादिनां तथा चौरा, भिक्षुका गृहमेधिनाम् ।
गणिकाः कामिनां चैव, सर्वलोकस्य शिल्पिनः ॥ १६७ ॥

संमानसंयुक्ताः = संमानिता अपि। वृत्तिभङ्गात्=जीविकाविनाशात्। वृत्तेः = जीविकायाः। ('पेटिया' 'तनखाह')। कालातिक्रमणं=समयोल्लङ्घनं। ('कई महीने तक तनखाह न देना') भर्त्सिताः = तर्जिताः ॥१६५॥

इत्थम्भूताः = भृत्या एवं जीविकार्थमेव राजानं सेवन्ते इति, न किन्तु—यावत् = दृश्यमानम्। इदं जगत् = संसारः। परस्परम् = अन्योन्यं। भक्षणार्थं= वञ्चयित्वा स्वोदरपूरणार्थमेव। सामादिभिः = साम-दान-दण्ड-भेदाख्यैरुपायैः सज्जितं तिष्ठतीत्यर्थः।

देशानां = ग्रामनगरादिनिवासिनामुपरि। क्ष्मापाः = राजानः–उपजीवनाय प्रतीक्षन्ते = अवसरं प्राप्य स्वजीवनाय धनं गृह्णन्ति। आतुराणां = रोगार्त्तानामुपरि। चिकित्सकाः = वैद्याः। 'प्रतीक्षन्ते' इति शेषः। वणिजः = वैश्याः। प्रमादिनाम् = अवधानशून्यानां। चौराः = तस्कराः। गृहमेधिनां = गृहस्थानाम्।

---

1 'क्ष्माभृत्'।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1]सामाद्यैः सज्जितै पाशैः प्रतीक्षन्ते दिवाऽनिशम्।
उपजीवन्ति शक्त्या हि जलजा जलजानिव ॥ १६८ ॥

अथवा साध्विदमुच्यते--

सर्पाणां च, खलानां च, परद्रव्याऽपहारिणाम्।
अभिप्राया न सिद्ध्यन्ति तेनेदं वर्तते जगत् ॥ १६९ ॥

अत्तुं वाञ्छति शाम्भवो गणपतेराखुं क्षुधार्तः फणी,
तं च क्रौञ्चरिपोः शिखी, गिरिसुतासिंहोऽपि नागाऽशनम् ॥
इत्थं यत्र परिग्रहस्य घटना शम्भोरपि स्याद्गृहे,
तत्रान्यस्य कथं न ?, भाविजगतो यस्मात्स्वरूपं हि तत् ॥ १७० ॥

[2]ततः स्वामिप्रसादरहितौ क्षुत्क्षामकण्ठौ परस्परं करटक-दमनकौ

शिल्पिनः = स्वर्णकारादयः। सामादिना = सामदानदण्डभेदादिना। सज्जितैः= कल्पितैः। पाशैः=पाशैरिव वञ्चनासाधनैर्व्यवहारैरुपलक्षिताः सन्तः। इत्थम्भूत-लक्षणे तृतीया। जलजाः=मीनादयः। जलजानिव=लघुमीनानिव। उपजी-वन्ति=वृत्तये समाश्रयन्ते। तान् भुञ्जते ॥ १६८ ॥ खलानां=वञ्चकानाम्। अभिप्रायाः=जगद्विनाशवैक्लव्यादयः। वर्त्तते=जीवति ॥ १६९ ॥

अत्तुमिति। शम्भोरयं शाम्भवः–फणी=सर्पः। गणपतेः=गणेशस्य, आखुं= मूषकम्। अत्तुं=भक्षयितुम्। वाञ्छति=इच्छति। तं=शिवकण्ठाभरणं सर्पं। क्रौञ्चरिपोः=कुमारस्य। 'वाहन' मिति शेषः। शिखी=मयूरः। 'अत्तुं वाञ्छति।' नागाशनं=मयूरं। गिरिसुतायाः ('वाहनं')। सिंहः=अत्तुं वाञ्छतीति सम्बन्धः। इत्थम् = एवं प्रकारेण। यत्र-शम्भोरपि=जगदीश्वरस्यापि गृहे-परिग्रहस्य=कुटुम्बस्य, अनुजीविवर्गस्य च। घटना=संघटनं, कलहो, विरोधभावो वा। तत्र अन्यस्य गृहे स्त्रीपुत्रभृत्यादिवर्गे कलहः कथं न ?। अवश्यमेव स्यात्। यतः—तत्=शम्भुगृहं। भाविनो जगतः=सृष्टेः। उत्पत्स्यमानस्य जगतः। स्वरूपम्=आदर्शभूतम् ॥१७०॥

स्वामिप्रसादरहितौ=राजानुग्रहशून्यौ। क्षुत्क्षामकण्ठौ = क्षुधाक्षीणगलौ,

---

१ 'सामादि'। २ 'तौ च करटकदमनकौ स्वामिप्रसादरहितौ' पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मन्त्रयेते। तत्र दमनको ब्रूते-'आर्य करटक! अवां तावदप्रधानतां गतौ। एष पिङ्गलकः सञ्जीवकवचनानुरक्तः स्वव्यापारपराङ्मुखः सञ्जातः। सर्वोऽपि [1]परिजनो गतः। तत्किं क्रियते?'।

करटक आह-'यद्यपि त्वदीयवचनं न करोति, तथापि स्वामी स्वदोषनाशाय वाच्यः।

उक्तञ्च--

अश्रृण्वन्नपि बोद्धव्यो मन्त्रिभिः पृथिवीपतिः।
यथा स्वदोषनाशाय विदुरेणाऽम्बिकासुतः॥ १७१॥

तथा च--

मदोन्मत्तस्य भूपस्य, कुञ्जरस्य च गच्छतः।
उन्मार्गं, वाच्यतां यान्ति महामात्राः समीपगाः॥ १७२॥

यत्तु त्वयैष शष्पभोजी स्वामिनः [2]सकाशमानीतः, तत्स्वहस्तेनाऽङ्गाराः कर्षिताः'।

दमनक आह-'सत्यमेतत्, ममायं दोषो, न स्वामिनः'।

बुभुक्षादिपीडितौ। स्वव्यापारस्य=मृगवधादेः। पराङ्मुखः=विरक्तः। स्वदोषनिरासाय=आत्मदोषनिरासाय। भृत्यकर्त्तव्यपालनायेति यावत्। स्वामी वाच्यः=राजोपदेष्टव्यः। स्वदोषनाशाय=स्वनिन्दानिवृत्तये। बोद्धव्यः=उपदेष्टव्यः। यथाऽश्रृण्वन्नपि अम्बिकासुतः=धृतराष्ट्रः। विदुरेण प्रतिबोधितः=सदुपदेशं श्रावितः।१७१।

उन्मार्गं गच्छतोर्मदोन्मत्तयोर्भूपगजयोः—समीपस्थाः। महामात्राः=सचिवाः, हस्तिपकाध्यक्षाश्च। ('महावत' और 'मन्त्री')। वाच्यतां=निन्दनीयताम्। यान्ति=गच्छन्ति। 'महामात्रः समृद्धे चाऽमात्ये हस्तिपकाधिपे' इति मेदिनी॥ १७२॥

त्वया=करटकेन। एषः=सञ्जीवकः। शष्पभोजी=घासभोजी। स्वामिनः=प्रभोः सिंहस्य। तत्=तदेतत्तदानयनम्।

अङ्गाराः कर्षिताः=स्वहस्तेन अग्निरुप्तः। ('आग बोना' अपने हाथसे कांटे

---

१ 'परिजनः कोऽपि कुत्रापि गतः'। इति पा०।

२. 'स्वामिना सह संयोजितः'।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उक्तश्च यतः--

जम्बुको हुडुयुद्धेन, वयं चाऽऽषाढभूतिना ।
दूतिका [1]तन्तुवायेन, त्रयो दोषाः स्वयङ्कृताः ॥ १७३ ॥

करटक आह—कथमेतत् ?' ।

सोऽब्रवीत्--

४. [2]आषाढभूति--जम्बुक--दूती-कथा ।

अस्ति कस्मिंश्चिद्विविक्तप्रदेशे मठाऽऽयतनम् । [3]तत्र देवशर्मा नाम परिव्राजकः प्रतिवसति स्म । तस्याऽनेकसाधुजनदत्तसूक्ष्मवस्त्रविक्रयवशात्कालेन महती वित्तमात्रा सञ्जाता । ततः स न कस्यचिद्विश्वसिति, नक्तन्दिनं कक्षान्तरात्तां मात्रां न मुञ्चति ।

अथवा साधु चेदमुच्यते--

अर्थानामर्जने दुःखमर्जितानाञ्च रक्षणे ।
आये दुःखं, व्यये दुखं, धिगर्थाः कष्टसश्रयाः ॥१७४॥

अथाऽऽषाढभूतिर्नाम परवित्तापहारी धूर्तस्तामर्थमात्रां तस्य कक्षा-

---

बोना') । स्वहस्तेन मार्गे अग्निवपनेन तुल्यमित्याशयः । हुडुः=मेषः । तन्तुवायः=कौलिकः । ('जुलाहा' 'कोली' 'कोष्ठी' ।) 'दूतिका परकार्येणे' त्यपि पाठः ॥१७३॥

विविक्तप्रदेशे=निर्जनस्थाने । मठायतनं=छात्रादिनिवासः (मठ) । परिव्राजकः = संन्यासी । साधुजनाः=श्रेष्ठिनः ('साहुकार') । सूक्ष्मवस्त्राणि=चीनांशुकादीनि । यतिभ्यो वस्त्रमेव दक्षिणास्थाने दीयते, न काञ्चनादिकमिति प्रसिद्धम् । वित्तमात्रा = धनराशिः । नक्तन्दिवम् = अहर्निशम् । कक्षान्तरात् = क्रोडोत्सङ्गात् । (बगल से) । आये = आगमने । व्यये = उपभोगे । अर्थाः = धनानि । कष्टसंश्रयाः = क्लेशप्रदाः । अतस्तान् धिगिति योजना ॥ १७४ ॥

---

१. 'परकार्येण' । २. इयं कथाऽश्लीलतया काशिकमध्यमपरीक्षापाठ्यांशबहिर्भूता ।
३. 'यजमान' ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्तरगतां लक्षयित्वा व्यचिन्तयत्–'कथं मयाऽस्येयमर्थमात्रा हर्त्तव्या ?' इति। तदत्र मठे तावद् दृढशिलासञ्चयवशाद्भित्तिभेदो न भवति। उच्चैस्तरत्वाच्चाऽद्वारेण प्रवेशो न स्यात्। तदेनं मायावचनैर्विश्वास्याहं छात्रतां व्रजामि, येन च विश्वस्तः कदाचिन्मम हस्तगतो भविष्यति।

उक्तञ्च—

निःस्पृहो नाऽधिकारी स्यान्नाऽकामी मण्डनप्रियः।
नाऽविदग्धः प्रियं ब्रूयात्स्फुटवक्ता न वञ्चकः ॥ १७५ ॥

एवं निश्चित्य तस्याऽन्तिकमुपगम्य—'ॐनमः शिवाये'ति प्रोच्चार्य, साष्टाङ्गं प्रणम्य च, सप्रश्रयमुवाच–'भगवन्! असारः संसारोऽयम्। गिरिनदीवेगोपमं यौवनम्। तृणाऽग्निसमं जीवितम्। शरदभ्रच्छायासदृशा भोगाः। स्वप्नसदृशो मित्रपुत्रभृत्यवर्गसम्बन्धः। [1]एवं मया सम्यक्परिज्ञातं, तत्किं कुर्वतो मे संसारसमुद्रोत्तरणं भविष्यति ?'।

तच्छ्रुत्वा देवशर्मा साऽऽदरमाह–'वत्स! धन्योऽसि त्वम् यत्प्रथमे वयस्येवं विरक्तभावः'।

परवित्तापहारि=परधनतस्करः। धूर्तः=वञ्चकः ('ठग')। अर्थमात्रा=धनराशिः। ('माल–मत्ता' 'रुपया–पैसा')। भित्तिभेदः=सन्धिभेदः। ('सेन्ध')।

अद्वारप्रवेशः=भित्तिमुल्लङ्घ्य प्रवेशः। एनं=देवशर्माणं। छात्रतां=शिष्यताम्। विश्वस्तः=जातविस्रम्भः। हस्तगतः=मद्वशगः। निःस्पृह इति। अधिकारी=अधिकारारूढः। अकामी=कामुकभिन्नः। मण्डनप्रियः=शृङ्गाराभरणप्रियः।

अविदग्धः=अकुशलः। स्फुटवक्ता=स्पष्टवादः। (स्पष्ट कहने वाला)॥१७५॥ तस्य = देवशर्मणः। सप्रश्रयं=सप्रणयम्।

यथा-गिरिनदीवेगः शीघ्रमेव शाम्यति, तथा यौवनमपि शीघ्रमेवापयाति। तृणाग्निरपि शीघ्रमेव शाम्यति, तथा=तद्वत् जीवनमपि शीघ्रमेव नश्यति। शरदभ्रच्छायासदृशाः=शरदृतुमेघच्छायासदृशाः शीघ्रं विनाशिनः। भोगाः=विषयाः।

---

१. 'एतन्मया'।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यत उक्तञ्च—

'पूर्वे वयसि यः शान्तः स शान्त' इति मे मतिः ।
धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते ? ॥ १७६ ॥
आदौ चित्ते ततः काये सतां[1]संपद्यते जरा ।
असतां [2]तु पुनः काये, नैव चित्ते कदाचन ॥ १७७ ॥

यच्च त्वं मां [3]संसारसागरोत्तरणोपायं पृच्छसि, तच्छ्रूयताम्—

'शूद्रो वा यदि वाऽन्योऽपि [4]चाण्डालोऽपि जटाधरः ।
दीक्षितः शिवमन्त्रेण [5]सभस्माङ्गः शिवो भवेत् ॥ १७८ ॥
षडक्षरेण मन्त्रेण पुष्पमेकमपि स्वयम् ।
लिङ्गस्य मूर्ध्नि यो दद्यान्न स भूयोऽपि जायते ॥ १७९ ॥

तच्छ्रुत्वा आषाढभूतिस्तत्पादौ गृहीत्वा सप्रश्रयमिदमाह—'भगवन्! तर्हि दीक्षया[6] मेऽनुग्रहं कुरु ।'

देवशर्मा आह—'वत्स ! अनुग्रहं ते करिष्यामि, परन्तु रात्रौ त्वया

पूर्वे वयसि=यौवने । संपद्यते=जायते । जरा=श्लथीभावः । काये—जरा सम्पद्यते, मनसि न कदाचनेति सम्बन्धः ॥ १७७ ॥

शिवमन्त्रेण=पञ्चाक्षरेण, षडक्षरेण वा । दीक्षितः=गृहीतदीक्षः । दीक्षा=संस्कारविशेषः । भस्माङ्गः=भस्मोद्धूलितकायः । 'सभस्माङ्गः' इति पाठान्तरम् । शिवः=शिवसदृशः । 'द्विज' इति पाठे—चाण्डालादिरपि भस्मधारणदिना द्विजतुल्यो भवतीत्यर्थः ॥ १७८ ॥

षडक्षरेण मन्त्रेण शिवपूजकः न जायते=न पुनरपि गर्भयातनामनुभवति । पादौ गृहीत्वा=प्रणम्य । सप्रश्रयं=सस्नेहम् । दीक्षया=तदाख्येन संस्कारेण ।

---

१. 'संजायते' । २. 'असताञ्च' पाठान्तरम् ।
३. 'सागरोत्तरणोपायं' । ४. 'चण्डालो' । ५. 'भस्माङ्गो द्विजो' ।
६ 'व्रतदानेन मे प्रसादः क्रियताम् । इति' ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न मठमध्ये प्रवेष्टव्यं। यत्कारणं, निःसङ्गता यतीनां प्रशस्यते, तव च ममापि च।

उक्तञ्च यतः—

दुर्मन्त्रान्नृपतिर्विनश्यति, यतिः सङ्गात्सुतो लालना—
द्विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात्।
मैत्री चाऽप्रणयात्समृद्धिरनयात्स्नेहः प्रवासाश्रया—
त्स्त्री गर्वादनवेक्षणादपि कृषिस्त्यागात्प्रमादाद्धनम् ॥१८०॥

तत्त्वया व्रतग्रहणानन्तरं मठद्वारे तृणकुटीरके शयितव्यम्'—इति। स आह—'भगवन्! भवदादेशः प्रमाणं, परत्र हि तेन मे प्रयोजनम्।'

अथ कृतशयनसमयं देवशर्मा दीक्षाऽनुग्रहं कृत्वा शास्त्रोक्तविधिना शिष्यतामनयत्। सोऽपि हस्तपादावमर्दनेन[1], पत्रिकानयनादिकया च परिचर्यया तं परितोषमनयत्। पुनस्तथापि मुनिः कक्षान्तरान्मात्रां न मुञ्चति।

अथैवं गच्छति काले आषाढभूतिश्चिन्तयामास—'अहो! न कथञ्चिदेष मे विश्वासमागच्छति, तत्किं दिवाऽपि शस्त्रेण मारयामि, ? किं वा विषं प्रयच्छामि, ? किं वा पशुधर्मेण व्यापादयामि' ?—इति।

गर्वात्=रूपादिगर्वात्। त्यागात्=अतिदानात्। प्रमादात्=अनवधानाच्च-धनं नश्यतीत्यर्थः ॥ १८० ॥

व्रतग्रहणं=दीक्षाग्रहणं। भवदादेशः=भवदाज्ञा। परत्र=परलोके। तेन=भवदादेशेनैव। प्रयोजनं=कार्यं—स्वर्गादिफलं—भविष्यतीत्याशयः। पत्रिका=बिल्वपत्रम्।

कृतः शयनस्य समयो येन तं=कृतबहिश्शयनप्रतिज्ञम्। अनुग्रहं=कृपां। देवशर्मा स्वशिष्यतां ग्राहयामास। हस्तपादावमर्दनादिपरिचर्यया=पादसंवाहनादिसेवया। तं=देवशर्माणम्। दिवापि=दिने एव। पशुधर्मेण=गलमुखाव-

---

१ 'अथ मर्दनादिपरिचर्यया' पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एवं चिन्तयतस्तस्य देवशर्मणोऽपि[1] शिष्यपुत्रः कश्चिद् ग्रामादामन्त्रणार्थं समायातः।

प्राह च–'भगवन्! पवित्रारोपणकृते[2] मम गृहमागम्यताम्'–इति। तच्छ्रुत्वा देवशर्मा आषाढभूतिना सह प्रहृष्टमनाः प्रस्थितः।

अथैवं तस्य गच्छतोऽग्रे काचिन्नदी समायाता। तां दृष्ट्वा मात्रां कक्षान्तरादवतार्य, कन्थामध्ये सुगुप्तां निधाय, स्नात्वा, देवार्चनं विधाय, तदनन्तरमाषाढभूतिमिदमाह—'भो आषाढभूते! यावदहं पुरीषोत्सर्गं कृत्वा समागच्छामि, तावदेषा कन्था योगेश्वरस्य[3] सावधानतया रक्षणीया'।—इत्युक्त्वा गतः।

आषाढभूतिरपि तस्मिन्नदर्शनीभूते मात्रामादाय सत्वरं प्रस्थितः। देवशर्माऽपि छात्रगुणानुरञ्जितमनाः सुविश्वस्तो यावदुपविष्टस्तिष्ठति तावद्धुडु[4]-(सुवर्णरोमदेह)-यूथमध्ये हुडुयुद्धमपश्यत्।

अथ रोषवशाद्धुडुयुगलस्य–दूरमपसरणं कृत्वा भूयोऽपि समुपेत्य ललाटपट्टाभ्यां प्रहरतो भूरि रुधिरं पतति, [5]तच्च जम्बुको जिह्वालौल्येन रङ्गभूमिं प्रविश्याऽऽस्वादयति।

देवशर्मापि तदालोक्य व्यचिन्तयत्–'अहो! मन्दमतिरयं जम्बुकः, यदि कथमप्यनयोःसंघट्टे पतिष्यति तन्नूनं मृत्युमवाप्स्यतीति वितर्कयामि।'

रोधेन। (गला घोंट कर)। आमन्त्रणार्थं=निमन्त्रणार्थं। पवित्रारोपणार्थं=तदाख्योत्सवसम्पादनाय। श्रावणे देवस्य पवित्रारोपणमहोत्सवो भवति शैववैष्णवादीनाम्। कन्थामध्ये=वस्त्रमध्ये। ('झोली में' 'गुदड़ी में')। देवार्चनं=कन्थानिहितस्वेष्टदेवशिवार्चनं। प्रतिवचनम्=उत्तरम्। योगेश्वरस्य=शिवस्य। हुडुः=मेषः।

---

१ 'देवशर्मशिष्यपुत्रः'। २ 'पवित्रारोपणविषये मम गृहम्'।

३ योगेश्वरश्च सावधानेन रक्षणीयः' पा०।

४ 'हुडो हुडुश्च भेडश्चे'ति हैमाद्धुड इत्यादिपाठः शुद्ध एव।

५ 'तच्च दृष्ट्वाऽऽशाप्रतिबद्धचित्तः पिशितलोलुपतया गोमायुस्तयोरन्तरे स्थित्वा रुधिरमास्वादयति' पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्षणान्तरे[1] च तथैव रक्तास्वादनलौल्यान्मध्ये प्रविशंस्तयोः शिरःसंपाते पतितो मृतश्च शृगालः ।

ततो देवशर्मा प्राह–'जम्बुको हुडुयुद्धेन' इति ।

देवशर्मापि तं शोचमानो मात्रामुद्दिश्य शनैः-शनैः प्रस्थितो यावदाषाढभूतिं न पश्यति, ततश्चौत्सुक्येन शौचं विधाय यावत्कन्थामालोकयति, तावन्मात्रां न पश्यति ।

ततश्च 'हा ! हा ! मुषितोऽस्मि'–इति जल्पन्पृथिवीतले मूर्च्छया निपपात । ततः क्षणाच्चेतनां लब्ध्वा भूयोऽपि समुत्थाय फूत्कर्तुमारब्धः–'भो आषाढभूते ! क्व मां वञ्चयित्वा गतोऽसि ।' देहि मे प्रतिवचनम् ।'

एवं बहु विलप्य तस्य पदपद्धतिमन्वेषयन् 'वयं चाऽऽषाढभूतिना ।' इति प्रजल्पञ्छनैः–शनैः प्रस्थितः ।

अथैवं गच्छन्सायन्तनसमये कश्चिद् ग्राममासासाद । अथ तस्माद्ग्रामात्कश्चित्कौलिकः सभार्यो मद्यपानकृते समीपवर्तिनि नगरे प्रस्थितः। देवशर्मापि तमालोक्य प्रोवाच–'भो भद्र ! वयं सूर्योढा अतिथयस्तवान्तिकं प्राप्ताः, न कमप्यत्र ग्रामे जानीमः, तद्गृह्यतामतिथिधर्मः ।

उक्तञ्च–

[2]अप्रणाय्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिनाम् ।
पूजया तस्य देवत्वं प्रयान्ति गृहमेधिनः ॥१८१॥

तथा च–

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ।
सतामेतानि हर्म्येषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥१८२॥

रङ्गभूमिः=युद्धभूमिः । संघट्टे=सम्मर्दे । शिरःसंपाते=शिरः–संघट्टे । ('टक्कर में') । फूत्कर्तुं = तारं रोदितुं । कौलिकः = तन्तुवायः । ('जुलाहा' 'कोली') । सूर्योढः=सूर्यास्तमनवेलायां प्राप्तः । अप्रणाय्यः = माननीयः । तृणानि=पलालकटा-

---

१ 'अथान्यस्मिन्प्रस्तावे तथैव रक्तास्वादनलौल्यान्नापसृतस्तयोः' ।

२ संप्राप्तो योऽतिथिः' ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वागतेनाऽग्नयस्तृप्ता[1], आसनेन शतक्रतुः ।
पादशौचेन [2]पितरो, [3]ह्यर्घाच्छम्भुस्तथाऽतिथेः ॥१८३॥

कौलिकोऽपि तच्छ्रुत्वा भार्यामाह—'प्रिये ! गच्छ त्वमतिथिमादाय गृहं प्रति, पादशौचभोजनशयनादिभिः सत्कृत्य त्वं तत्रैव तिष्ठ, अहं तव कृते प्रभूतं मद्यमानेष्यामि ।'

एवमुक्त्वा प्रस्थितः ।

सापि भार्या पुंश्चली तमादाय प्रहसितवदना देवदत्तं मनसि ध्यायन्ती गृहं प्रति प्रतस्थे । अथवा साध्विदमुच्यते—

'दुर्दिवसे घनतिमिरे दुःसञ्चारासु नगरवीथीषु ।
पत्युर्विदेशगमने परमसुखं जघनचपलायाः ॥१८४॥

तथा च—

[4]पर्यङ्कं स्वास्तरणं, पतिमनुकूलं, मनोहरं शयनम् ।
तृणमिव लघु मन्यन्ते कामिन्यश्चौर्यरतलुब्धाः ॥१८५॥

तथा च—

केलिं प्रदहति लज्जा, शृङ्गारोऽस्थीनि, चाटवः कटवः ।
बन्धक्याः परितोषो न किंचिदिष्टे भवेत्पत्यौ ॥१८६॥

दीनि । ('पुआल' 'चटाई') । सूनृता = मधुरा । 'मधुरं सूनृतं प्रिये' इत्यमरः । सतां = सज्जनानां । हर्म्येषु=गृहेषु । न उच्छिद्यन्ते = न दूरीभवन्ति । अतिथेः स्वागतेन अग्नयस्तृप्यन्ति । शतक्रतुः = इन्द्रः ॥ १८३ ॥

प्रभूतं=बहुलम् । पुंश्चली = असती । देवदत्तं=स्वप्रियं कंचन पुरुषविशेषम् । दुर्दिवसे = मेघच्छन्नेऽह्नि । घनतिमिरे=निबिडान्धकारे । वीथी=रथ्या । ('गली') जघनचपलानां=कुलटानाम् ॥१८४॥ स्वास्तरणं=मृदुधवलपरिच्छदयुक्तम् । शयनं =शय्या, रतिमन्दिरं वा । चौर्यरतं=जारसम्भोगः ॥१८५॥ बन्धक्यः=कुलटाः ।

---

१ 'प्रीताः' । २ 'गोविन्दो ह्यन्नाद्येनप्रजापति'रिति पा० ।
३ 'पितरस्तथार्घादतिथेः शिवः' इति च सुन्दरः पाठो लिखितेषु ।
४ 'पर्यङ्के स्वास्तरण' मिति पा० । 'पर्यङ्कः स्वास्तरणः पतिरनुकूलः' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुलपतनं जनगर्हां बन्धनमपि जीवितव्यसन्देहम् ।
अङ्गीकरोति कुलटा सततं परपुरुषसंसक्ता ॥१८७॥

अथ कौलिकभार्या गृहं गत्वा देवशर्मणे गताऽऽस्तरणां, भग्नां च खट्वां समर्प्येदमाह—'भो भगवन् ! यावदहं स्वसखीं ग्रामादभ्यागतां सम्भाव्य द्रुतमागच्छामि, तावत्त्वयाऽस्मद्गृहेऽप्रमत्तेन भाव्यम् ।'

एवमभिधाय शृङ्गारविधिं विधाय यावद्देवदत्तमुद्दिश्य व्रजति-तावत्तद्भर्ता संमुखो मदविह्वलाङ्गो मुक्तकेशः पदे-पदे प्रस्खलन्गृहीतमद्य-भाण्डः समभ्येति । तं च दृष्ट्वा सा द्रुततरं व्याघुट्य, स्वगृहं प्रविश्य मुक्तशृङ्गारवेषा यथापूर्वमभवत् ।

कौलिकोऽपि तां पलायमानां [1]कृताऽद्भुतशृङ्गारां विलोक्य प्रागेव कर्णपरम्परया तस्या अपवादश्रवणात् क्षुभितहृदयः[2] स्वाकारं निगूह-मानः सदैवाऽऽस्ते । ततश्च तथाविधं चेष्टितमवलोक्य दृष्टप्रत्ययः क्रोध-वशगो गृहं प्रविश्य तामुवाच—'आः पापे पुंश्चलि ! क्व प्रस्थितासि' ? ।

सा प्रोवाच—'अहं त्वत्सकाशादागता न कुत्रचिदपि निर्गता, तत्कथं मद्यपानवशादप्रस्तुतं वदसि' ? ।

अथवा साधु चेदमुच्यते—

वैकल्यं धरणीपातमयथोचितजल्पनम्[3] ।
संनिपातस्य चिह्नानि मद्यं सर्वाणि दर्शयेत् ॥ १८८ ॥

कुलपतनं=कुलभ्रंशं । जीवितव्यसन्देहं=जीवनसंशयम् ॥१८७॥ गतास्तरणाम्=आस्तरणरहिताम् । (बिछावन के बिना) । सम्भाव्य=तया सहाऽऽलापादिकं-विधाय । अप्रमत्तेन=सावधानेन । देवदत्तं=स्वप्रियं कञ्चित् । व्याघुट्य=परा-वृत्य । ('बावड कर' 'लौट कर') । श्रुतेन अपवादेन क्षुभितं हृदयं यस्यासौ तथा=स्वपत्नीचरित्रभ्रंशवृत्तान्तश्रवणक्षुब्धदूयमानचेताः । स्वाकारं=स्वमनोभावं । निगूहमानः=गोपायन् । दृष्टप्रत्ययः=जातविश्वासः । वैकल्यं=विकलतां । मद्येन संनिपातरोगलक्षणानि भूमिपतनादीनि सर्वाणि भवन्तीत्यर्थः ॥ १८८ ॥

---

१ 'कृतशृङ्गाराम्' । २ 'श्रुतापवादक्षुभितहृदयः' । ३ 'नित्यानुचितजल्पनम्' ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1]करस्पन्दोऽम्बरत्यागस्तेजोहानिः सरागता ।
वारुणीसङ्गजाऽवस्था भानुनाऽप्यनुभूयते' ॥ १८९ ॥

सोऽपि तच्छ्रुत्वा प्रतिकूलवचनं, वेषविपर्ययं चाऽवलोक्य तामाह–'पुंश्चलि ! चिरकालं श्रुतो मया तवाऽपवादः । तदद्य स्वयं सञ्जातप्रत्ययस्तव यथोचितं निग्रहं करोमि ।' इत्यभिधाय लगुडप्रहारैस्तां जर्जरितदेहां विधाय, स्थूणया सह दृढबन्धनेन बद्ध्वा, सोऽपि मदविह्वलाङ्गो निद्रावशमगमत् ।

अत्राऽन्तरे तस्याः सखी नापिती कौलिकं निद्रावशगतं विज्ञाय[2] तां गत्वेदमाह–'सखि ! स देवदत्तस्तस्मिन्स्थाने त्वां प्रतीक्षते, [3]तच्छीघ्रमागम्यताम्'–इति ।

सा चाह–'पश्य ममाऽवस्थां, तत्कथं गच्छामि, तद् गत्वा ब्रूहि तं कामिनं–यदस्यां रात्रौ न त्वया सह समागमः ।' (इति) ।

नापिती प्राह–'सखि ! मा मैवं वद, नायं कुलटाधर्मः ।

करेति । वारुणी=पश्चिमदिशा, मद्यञ्च । सङ्गः=तत्र गमनं, पातश्च । करस्पन्दः=हस्तकम्पः, किरणह्रासश्च । 'करसादः' इत्यपि पाठः । अम्बरत्यागः = गगनत्यागः, वस्त्रमोचनञ्च । नग्नता च तेजोहानिः = कान्तिहानिः । सरागता= लौहित्यवत्ता–मुखे, मण्डले च । भानुः = सूर्यः ॥ १८९ ॥

सः = कौलिकः । प्रतिकूलवचनं = विरुद्धक्रूरवाक्यं । पुंश्चलि = परपुरुषरते । तस्मिन्स्थाने = सङ्केतस्थले । सञ्जातप्रत्ययः = जातविश्वासः । निग्रहं = दण्डविधानम्, ताडनम् । तां=स्वभार्याम् । स्थूणया = स्तम्भेन । ('खम्भे से, 'थूणी से') । अन्तरे = अवसरे । (इस बीच में) । तस्याः = कौलिकभार्यायाः । तां= कौलिकपत्नीम् । सः=त्वत्प्रियः । तस्मिन्—पूर्वं सङ्केतिते । सा = कौलिकजाया । समागमो न । 'सम्भवती'ति शेषः ।

---

१ 'करसादः' । २ 'विज्ञायाऽगत्य चेदमाह' ।
३ 'गम्यताम्' ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उक्तञ्च—

विषमस्थ-स्वादुफल-ग्रहण-व्यवसाय-निश्चयो येषाम् ।
उष्ट्राणामिव तेषां मन्येऽहं शंसितं जन्म ॥ १९० ॥

तथा च—

सन्दिग्धे परलोके, जनापवादे च जगति बहुचित्रे ।
स्वाधीने पररमणे, धन्यास्तारुण्यफलभाजः ॥ १९१ ॥

अन्यच्च—

यद्यपि न भवति दैवात्पुमान्विरूपोऽपि बन्धकी रहसि ।
भव्यमपि तदपि कष्टान्निजकान्तं सा भजत्येव ॥१९२॥

साऽब्रवीत्–'यद्येवं-तर्हि कथय—कथं दृढबन्धनैर्बद्धा सती तत्र गच्छामि ? । संनिहितश्चायं पापात्मा मत्पतिः ।'

नापित्याह—'सखि ! मदविह्वलोऽयं सूर्यकरस्पृष्टः प्रबोधं यास्यति, तदहं त्वामुन्मोचयामि, मामात्मस्थाने बद्ध्वा द्रुततरं देवदत्तं सम्भाव्याऽऽगच्छ ।' साऽब्रवीत्–'एवमस्तु'–इति ।

तदनु सा नापिती तां स्वसखीं बन्धनाद्विमोच्य तस्याः स्थाने यथापूर्वमात्मानं बद्ध्वा तां देवदत्तसकाशे सङ्केतस्थानं प्रेषितवती ।

विषमस्थेति । यथा–दुर्गमस्थानस्थितस्वादुफलपल्लवादिग्रहणव्यापारनिश्चय उष्ट्राणां स्वभावः । तथा—दुर्लभचौर्यरतानन्दानुभवव्यापारनिश्चयः कुलटानां सहजो धर्मः । येषां=कुलटाजनानां, व्यवसायिनां, चौराणाञ्च । शंसितं=पूजितम् ॥ १९० ॥ परलोके किं भवितेति न निश्चयः,जनापवादस्तु बहुविधश्चलत्येव, एवं च स्वाधीनेन पररमणेन=जारेण, यौवनफलं=सुरतं, धन्या एव कामिन्यो लभन्ते । ता एव धन्या इत्यर्थः ॥ १९१ ॥

यद्यपीति । भव्यं=सुन्दरं स्वपतिं । निजकान्तं=स्वप्रियं । विरूपोऽपि जारः कुलटानां प्रियः, न तु सुन्दरोऽपि निजपतिरित्यर्थः ॥१९२॥ मदविह्वलः=मदविकलः । ('नशे में चूर') । सूर्यकरस्पृष्टः=प्रभाते सूर्यकिरणसंपर्कादेव । प्रबोधं=चेतनाम् । तत्=तस्मात् । माम्=नापितीं, दूतीम् । सा=पुंश्चली । (एवमस्तु=अच्छा) ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथाऽनुष्ठिते–कौलिकः कस्मिंश्चित्क्षणे समुत्थाय किंचिद्गतकोपो विमदस्तामाह–'हे परुषवादिनि! यदद्य प्रभृति गृहान्निष्क्रमणं न करोषि, न च परुषं वदसि, ततस्त्वामुन्मोचयामि।'

नापित्यपि स्वरभेदभयाद्यावन्न किंचिदूचे, तावत्सोऽपि भूयोभूयस्तां तदेवाऽऽह। अथ सा यावत्प्रत्युत्तरं किमपि न ददौ, तावत्स प्रकुपितस्तीक्ष्णशस्त्रमादाय तस्या नासिकामच्छिनत्। आह च–'रे पुंश्चलि! तिष्ठेदानीं, न त्वां भूयस्तोषयिष्यामि'। इति जल्पन्पुनरपि निद्रावशमगमत्।

देवशर्माऽपि वित्तनाशात्क्षुत्क्षामकण्ठो नष्टनिद्रस्तत्सर्वं स्त्रीचरित्रमपश्यत्। सापि कौलिकभार्या यथेच्छया देवदत्तेन सह सुरतसुखमनुभूय, कस्मिंश्चित्क्षणे स्वगृहमागत्य, तां नापितीमिदमाह—'अयि! शिवं भवत्याः?, नायं पापात्मा मम गताया उत्थित आसीत्?'।

नापित्याह–'शिवं नासिकया विना शेषस्य शरीरस्य, तद्द्रुतं मां मोचय[1] बन्धनाद्यावन्नायं[2] मां पश्यति, येन स्वगृहं गच्छामि। अन्यथा भूयोऽप्येष दुष्टतरः कर्णच्छेदादिनिग्रहं करिष्यति।'

तथाऽनुष्ठिते भूयोऽपि कौलिक उत्थाय तामाह–'पुंश्चलि! किमद्याऽपि न वदसि?। किं भूयोऽप्यतो दुष्टतरं निग्रहं कर्णच्छेदेन करोमि?'।

अथ सा सकोपं साऽधिक्षेपमिदमाह–'धिग्धिङ् महामूढ! को मां महासतीं धर्षयितुं, व्यङ्गयितुं वा समर्थः?।

तदनु=तदनन्तरम्। स्वसखीं=कौलिकीम्। परुषं=क्रूरम्। स्वरभेदभयात्=स्वस्वरभेदभीता। तदेव=तदेव वाक्यम्। भूयः=अधिकम्। (अब और ज्यादा)। न तोषयिष्यामि=न चाटुशब्दं कथयिष्यामि। (अब मैं तेरी और खुशामद नहीं करूँगा, ऐसे ही बन्धी रह)। शिवं=कुशलम्। तथानुष्ठिते=बन्धनमोचने कृते सति। साऽधिक्षेपं=सनिन्दम्। धर्षयितुं=पीडयितुं, तिरस्कर्त्तुं वा। व्यङ्गयितुं=नासिकादिकर्त्तनेन विकलावयवां विधातुम्।

---

१ 'मुञ्च'। २ 'नायं प्रतिबुध्यते'। इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तच्छृण्वन्तु सवऽपि लोकपालाः—

आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ॥१९३॥

तद्यदि मम सतीत्वमस्ति, मनसाऽपि परपुरुषो (मया) नाभिलषितः, ततो देवा भूयोऽपि मे नासिकां तादृग्रूपामक्षतां कुर्वन्तु।

अथवा—यदि मम चित्ते परपुरुषस्य भ्रान्तिरपि भवति, तदा मां भस्मसान्नयन्तु।'

एवमुक्त्वा भूयोऽपि तमाह-'भो दुरात्मन्! पश्य मे सतीत्वप्रभावेण तादृश्येव नासिका संवृत्ता!।'

अथाऽसावुल्मुकमादाय, यावत्पश्यति तावत्तद्रूपां,नासिकाञ्च, भूतले रक्तप्रवाहं च महान्तमपश्यत्। अथ स विस्मितमनास्तां बन्धनाद्विमुच्य शय्यायामारोप्य च चाटुशतैः पर्यतोषयत्।

देवशर्माऽपि तं सर्वं वृत्तान्तमालोक्य विस्मतमना इदमाह—

'शम्बरस्य च या माया, या माया नमुचेरपि ।
बलेः कुम्भीनसेश्चैव सर्वास्ता योषितो विदुः ॥ १९४ ॥
हसन्तं प्रहसन्त्येता, रुदन्तं प्ररुदन्त्यपि ।
अप्रियं प्रियवाक्यैश्च गृह्णन्ति[1]कालयोगतः ॥ १९५ ॥

अनलः = वह्निः । द्यौः=आकाशः । वृत्तं=चरितम् ॥ १९३ ॥

तादृग्रूपां=यथावदेव । (पहिले की ही तरह) । उल्मुकम्=अलातं । (मसाल-'जलती लकड़ी आदि') । चाटुशतैः=प्रियवाक्यैर्बहुविधैः ।

शम्बररयेति । शम्बर-नमुचि-बलि-कुम्भीनसा असुरविशेषाः । सर्वविधामपि मायां स्त्रियो जानन्तीत्याशयः ॥ १९४ ॥

हसन्तं प्रति हसन्ति, रुदन्तं विलोक्य रुदन्ति वञ्चनार्थम्, अप्रियं वदन्तं च प्रियवाक्यैरात्मवशं नयन्तीत्यर्थः ॥ १९५ ॥

---

१ 'छलयोगतः' इति पाठो भवेत् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उशना वेद यच्छास्त्रं, यच्च वेद बृहस्पतिः ।
स्त्रीबुद्ध्या न विशिष्येत, तस्माद्रक्ष्याः कथं हि ताः ? ॥१९६॥
'अनृतं 'सत्य'मित्याहुः, सत्यं वापि तथाऽनृतम् ।'
इति यास्ताः कथं धीरैः संरक्ष्याः पुरुषैरिह ॥ १९७ ॥

अन्यत्राप्युक्तम्—

नाऽतिप्रसङ्गः प्रमदासु कार्यो
नेच्छेद्बलं स्त्रीषु विवर्द्धमानम् ।
अतिप्रसक्तैः पुरुषैर्यतस्ताः
क्रीडन्ति काकैरिव लूनपक्षैः ॥ १९८ ॥
[2]सुमुखेन वदन्ति वल्गुना,
प्रहरन्त्येव शितेन चेतसा ।
मधु तिष्ठति वाचि योषितां,
हृदये हालहलं [1]महाविषम् ॥ १९९ ॥

उशनाः=शुक्राचार्यः । विशिष्यते=स्त्रीबुद्धितो न बहिर्भवति । तासां बुद्धावेव सर्वं नीतिशास्त्रमन्तर्भवतीत्यर्थः ॥ ११६ ॥

अनृतमिति । सत्यं मिथ्या, असत्यं सत्यमिति च याः कथयितुं प्रभवन्ति तासां रक्षणं दुष्करमेवेत्यर्थः ॥ १९७ ॥

अतिप्रसङ्गः=अत्यन्तं स्नेहानुबन्धः—नोचितः, स्त्रीणां बलं वर्द्धमानं नोपेक्षेत । अतिप्रसक्तैः = वशीभूतैः । लूनपक्षैः = छिन्नपक्षैः ॥ १९८ ॥

वल्गुना=मधुरेण मनोहरेण च । शितेन=तीक्ष्णेन, मधु=माधुर्यं । क्षौद्रञ्च । हालहलं=तन्नामकं घोरं विषम् । 'हालाहलं वदन्त्यपि हलाहल'मिति द्विरूपकोशः ।

---

१ 'मधु तिष्ठति वाचि योषितां, हृदये हालहलं महद्विषम् ।
अत एव नु पीयतेऽधरो, हृदयं मुष्टिभिरेव ताड्यते ॥' इति पा० ।

२ 'महद्विष' मित्यपि क्वचित्पाठः । 'महाविष'मिति तु क्षीरस्वामिधृतः पाठः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अत एव निपीयतेऽधरोहृदयं मुष्टिभिरेव ताड्यते ।
पुरुषैः सुखलेशवञ्चितैर्मधुलुब्धैः कमलं यथाऽलिभिः ॥२००॥

अपि च—

आवर्तः संशयानामविनयभवनं, पत्तनं साहसानां,
दोषाणां सन्निधानं, कपटशतगृहं, क्षेत्रमप्रत्ययानाम् ।
दुर्ग्राह्यं यन्महद्भिर्नरवरवृषभैः, सर्वमायाकरण्डं,
स्त्रीयन्त्रं केन लोके विषममृतयुतं धर्मनाशाय सृष्टम् ॥२०१॥
कार्कश्यं स्तनयोर्दृशोस्तरलताऽलीकं मुखे [1]दृश्यते,
कौटिल्यं कचसंचये[2], प्रवचने मान्द्यं, त्रिके स्थूलता ।
भीरुत्वं हृदये, सदैव कथितं, मायाप्रयोगः प्रिये,
यासां [3]दोषगणो गुणो, मृगदृशां ताः किं[4] नराणां प्रियाः ॥२०२॥

अथ एवेति । हृदये विषस्य, मुखे मधुनश्च विद्यमानत्वान्मुखमाधुर्यवञ्चितैः=सुखलेशवञ्चितैः, सुखलवलुब्धैः पुरुषैस्तस्या अधरः पीयते, कामिन्या हृदयं मुष्टिभिराहन्यते च । कामशास्त्रे हि कामिनीहृदयप्रदेशताडनं कामोद्दीपकतया निर्दिष्टम् । भ्रमरा हि मधुलेशलुब्धाः कमलकण्टकवेधमपि सहन्ते इति च लौकिकम् ॥ २०० ॥

आवर्त्त इति । संशयानाम्—आवर्त्त इव=अम्भसां भ्रम इव । ('भंवरजाल') । प्रकृते सादृश्यात्तत्प्रयोगः । अविनयानां = धाष्ट्र्यानां । भवनं=गृहमिव । पत्तनं=नगरमिव । सन्निधानं=महान् निधिरिव । कपटशतानां–गृहम् । अप्रत्ययानाम्=अविश्वासानाम् । क्षेत्रं=केदार इव । स्त्रीनामकं यन्त्रमेतत्–अमृतयुतं विषं धर्मनाशाय सर्वासां मायानां–करण्डं=पेटकमिव, केन=ब्रह्मणा । सृष्टं = निर्मितम् । 'केन निर्मित' मिति प्रश्नो वा ॥ २०१ ॥

कार्कश्यमिति । तरलता = चञ्चलता । अलीकं = मिथ्यावचनं । कचसञ्चये = केशबन्धे । प्रवचने = भाषणे । मान्द्यं=मन्दता । त्रिके = पृष्ठ-

---

१ 'श्लाघ्यते' । २ 'कचसञ्चये च वचने' । ३ 'गुणाः' । ४ 'स्युः पशूनां प्रियाः' ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एता हसन्ति च रुदन्ति च कार्यहेतो-
विंश्वासयन्ति च, परं, न च विश्वसन्ति ।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन[1]
नार्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ॥२०३॥
व्याकीर्णकेसरकरालमुखा मृगेन्द्रा,
नागाश्च भूरिमदराजिविराजमानाः ।
मेधाविनश्च पुरुषाः समरेषु शूराः,
स्त्रीसन्निधौ परमकापुरुषा भवन्ति ॥२०४॥
कुर्वन्ति तावत्प्रथमं प्रियाणि,
यावन्न जानन्ति नरं प्रसक्तम् ।
ज्ञात्वा च तं मन्मथपाशबद्धं
ग्रस्ताऽऽमिषं मीनमिवोद्धरन्ति ॥२०५॥

वंशाधोभागे । नितम्बबिम्बे इति यावत् । प्रिये = कान्ते । मायाप्रयोगः=छलकार्मण-प्रयोगः । ('कपट' 'जादू-टोना') । इत्थं दोषसमूहरूपाः=यासां गुणाः, ताः कथं नराणां प्रिया भवन्ति ? । आश्चर्यमेतत् ! ॥ २०२ ॥

एता इति । कार्यहेतोः=स्वकार्यसाधनाय । हसन्ति च, रुदन्ति च । परं विश्वासयन्ति, परन्तु तं स्वयं नैव विश्वसन्ति । अतः—कुलशीलसमन्वितेन= कुलीनेन, शीलवता च नरेण । 'कुलशीलवते'ति पाठान्तरम् । श्मशाने बद्धा घटिकाः-श्मशानघटिकाः । ('श्मशान में बन्धी हुई हण्डिया', 'श्मशान घट') । तद्वदशुचित्वाद्वर्जनार्हाः ॥ २०३ ॥

व्याकीर्णैः केसरैः करालानि मुखानि येषान्ते,—विक्षिप्तसटाभारभीषणमुखाः । मृगेन्द्राः=सिंहाः । भूरिभिः—मदराजिभिः=मदरेखाभिः । विराजमानाः=शोभ-मानकटाः । नागाः=गजाश्च । स्त्रीणां निकटे परमकापुरुषा=नितान्तं कातरा इव, तद्वशीकृतस्वान्ता भवन्तीत्यहो चित्रम् ॥२०४॥

कुर्वन्तीति । प्रथमम्=आदौ । तावत् प्रियाणि=मनोहराणि कटाक्षभुज-

---

१ 'कुलशीलवता' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समुद्रवीचीव चलस्वभावाः,
सन्ध्याभ्ररेखेव मुहूर्तरागाः ।
स्त्रियः कृताऽर्थाः पुरुषं निरर्थं
निष्पीडिताऽलक्तकवत्त्यजन्ति ॥ २०६ ॥
अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभिता ।
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥२०७॥
संमोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति
निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ।
एताः प्रविश्य सरलं हृदयं नराणां,
किं वा न वामनयना न समाचरन्ति ! ॥२०८॥

विक्षेपादीनि । यावन्नरं प्रसक्तम् = अनुरक्तम्, संलग्नञ्च । मन्मथपाशबद्धं = कामपाशबद्धं । ग्रस्तमामिषं येनासौ तं=गिलितमांसखण्डं, सम्भोगलम्पटं च । 'आमिषं पुंनपुंसकं, भोग्यवस्तुनि संयोगेऽप्युत्कोचे पललेऽपि चे'ति मेदिनी । उद्धरन्ति= आकर्षन्ति, वशे नयन्ति च । परित्यजन्ति वा ॥ २०५ ॥

समुद्रेति । समुद्रवीचीव = समुद्रतरङ्गवत् । चलस्वभावाः = चञ्चलप्रकृतयः । सन्ध्याभ्ररेखेव=सायङ्कालिकमेघलेखेव । मुहूर्त्तरागाः=क्षणमात्ररक्ताः, क्षणिकानुरागाश्च । कृतार्थाः=साधितस्वप्रयोजनाः सत्यः । निरर्थं=निष्प्रयोजनं । निष्पीडितालक्तकवत् = निष्ठ्यूतरागं यावकमिव । त्यजन्ति = दूरीकुर्वन्ति, अपसारयन्ति ॥

अनृतमिति । अनृतं=मिथ्याभाषणम् । साहसम् = असमीक्ष्यकारिता । अशौचं =मलिनता । स्वभावजाः = नैसर्गिकाः । । २०७ ॥

मदयन्ति = प्रेमोन्मत्तं कुर्वन्ति । विडम्बयन्ति=उपहास्यतां नयन्ति, ('उल्लू बनाती हैं') । निर्भर्त्सयन्ति=तिरस्कुर्वन्ति । रमयन्ति=सुखयन्ति । विषादयन्ति= क्लेशयन्ति च । किमधिकम्—एताः—कपटकुशलाः—नराणां सरलं हृदयं प्रविश्य = स्वानुकूलमनुरक्तञ्च विधाय, किंवा तत् कार्यं यत् वामनयनाः = कमललोचनाः, न कुर्वन्ति ? । सर्वं कर्त्तुं प्रभवन्तीत्यर्थः ॥ २०८॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्तर्विषमया ह्येता, बहिश्चैव मनोरमाः ।
गुञ्जाफलसमाऽऽकारा योषितः केन निर्मिताः' ? ॥२०९॥

एवं चिन्तयतस्तस्य परिव्राजकस्य सा निशा महता कृच्छ्रेणाऽतिचक्राम। सा च दूतिका छिन्ननासिका स्वगृहं गत्वा चिन्तयामास–'किमिदानीं कर्तव्यं ?. कथमेतन्महच्छिद्रं [1]स्थगयितव्यम्' ? । (इति) ।

अथ तस्या एवं विचिन्तयन्त्या भर्त्ता कार्यवशाद्राजकुले पर्युषितः, प्रत्यूषे च स्वगृहमभ्युपेत्य [2]द्वारदेशस्थो विविधपौरकृत्योत्सुकतया तामाह –भद्रे ! शीघ्रमानीयतां क्षुरभाण्डं, येन क्षौरकर्मकरणाय[3] गच्छामि ।'

साऽपि च्छिन्ननासिका प्रत्युत्पन्नमतिर्गृहमध्यस्थितैव कार्यकरणाऽपेक्षया क्षुरभाण्डात्क्षुरमेकं समाकृष्य तस्याऽभिमुखं प्रेषयामास ।

नापितोऽप्युत्सुकतया[4]तमेकं क्षुरमवलोक्य,कोपाविष्टः संस्तदभिमुखमेव तं क्षुरं प्राहिणोत्[5] ।

एतस्मिन्नन्तरे सा दुष्टा ऊर्ध्वबाहू विधाय फूत्कर्तुमना गृहान्निश्चक्राम,–'अहो ! पापेनाऽनेन मम सदाचारवर्तिन्याः पश्यत नासिकाच्छेदो विहितः, तत्परित्रायतां ! परित्रायताम्[6] !!'(इति) ।

गुञ्जाफलं हि सविषं भवति, उपविषत्वाद्गुञ्जायाः । गुञ्जाफलमपि—बहिर्मनोहरमप्यन्तर्विषमयं भवति ॥ २०९ ॥

कृच्छ्रेण=कष्टेन । दूतिका=दूती, सा नापिती । महच्छिद्रम्=आत्मापराधः, नासाकर्त्तनञ्च । स्थगयितव्यं=आच्छादनीयम् । (कैसे छिपाउँ) । अत्र 'आवरणीय'–मिति पाठान्तरम् । पर्युषितः = कृतप्रवासः । (गया हुआ था) । विविधपौरकृत्योत्सुकतया = नानाविधपौरलोककार्यव्यासक्तचित्ततया । क्षुरभाण्डं = क्षुरकर्त्तर्यादिपेटिकां । ('लोखड') । प्रत्युत्पन्नमतित्वात्—कार्यकरणापेक्षया = स्वकार्यसाधनेच्छया । उत्सुकतया = त्वराव्यग्रतया । (हडबडाहट में) । प्राहिणोत् = प्रतिप्रेषयामास । ('फेंक दिया') । फूत्कर्तुमनाः = फूत्कृत्य रोदितु-

---

१ 'आवरणीयम्' । २ 'द्वारि स्थितो' । ३ 'पौरकर्म' । ४ 'समस्तक्षुरभाण्डासमर्पणाक्कोधाविष्टः' । ५ 'प्रक्षिप्तवान्' । ६ 'परित्रायध्वम्' ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अत्राऽन्तरे राजपुरुषाः समभ्येत्य, तं नापितं लगुडप्रहारैर्जर्जरीकृत्य, दृढबन्धनैर्बद्ध्वा, तया छिन्ननासिकया सह धर्माधिकरणस्थानं नीत्वा, सभ्यानूचुः—'शृण्वन्तु भवन्तः सभासदः! अनेन नापितेनाऽपराधं विना स्त्रीरत्नमेतद् व्यङ्गितं, तदस्य यद्युज्यते तत्क्रियताम्!'।

—इत्यभिहिते सभ्या ऊचुः—'रे नापित! किमिर्थं त्वया[1] भार्या व्यङ्गिता?, किमनया परपुरुषोऽभिलषितः?, उतस्वित्प्राणद्रोहः कृतः?, किंवा चौरकर्माऽऽचरितम्?। तत्कथ्यतामस्या अपराधः।'

नापितोऽपि प्रहारपीडिततनुर्वक्तुं[2] न शशाक। अथ तं तूष्णीम्भूतं दृष्ट्वा पुनः सभ्या ऊचुः—'अहो! सत्यमेतद्राजपुरुषाणां वचः। पापात्माऽयम्। अनेनेयं निर्दोषा वराकी दूषिता।

उक्तञ्च—

भिन्नस्वरमुखवर्णः शङ्कितदृष्टिः समुत्पतिततेजाः।
भवति हि पापं कृत्वा स्वकर्मसन्त्रासितः पुरुषः॥ २१०॥

मिच्छती। ('जोर से चिल्लाने की इच्छा से')। सदाचारवर्त्तिन्याः=पतिव्रतायाः। लगुडप्रहारैः=यष्टिकापातैः। जर्जरीकृत्य=शिथिलीकृत्य। धर्माधिकरणस्थाने=राजद्वारे। ('कचहरी में')। सभ्यान्=धर्माधिकरणस्थान्। ('जज' 'मजिस्ट्रेट')। यद्युज्यते=यदत्र कर्त्तुं युज्यते। यो दण्ड उचितोऽस्य भवति। व्यङ्गिता=नासाच्छेदेन विकलतां नीता। (इसकी आकृति='सूरत' क्यों बिगाड़ दी)।

प्राणद्रोहः=विषादिदानेन पतिप्राणहरणोद्यमः। पापात्मा=दुष्टस्वभावः, कृतापराधः। वराकी=दीना। दूषिता=व्यङ्गिता। इत्येवं राजपुरुषवचनं सत्यमेवेत्यर्थः।

भिन्नः स्वरो,मुखवर्णश्च यस्यासौ तथा=स्खलितवाक्, परावर्त्तितमुखवर्णश्च। शङ्कितदृष्टिः=भयचञ्चललोचनः। चकित इव विलोकमानश्च। समुत्पतिततेजाः=हतप्रभः॥ २१०॥

---

१ 'किमिदं वैशसं स्वदारेषु कृतम्'। पा० २ 'विस्मयमूढमतिर्यदा नोत्तरं प्रयच्छति, तदा ते सभासदः शास्त्रानुगतमूचुः।' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा च—

आयाति स्खलितैः पादैर्मुखवैवर्ण्यसंयुतः ।
ललाटस्वेदभाग् भूरि गद्गदं भाषते वचः ॥ २११ ॥
[1]अधोदृष्टिर्वदेत्कृत्वा पापं प्राप्तः सभां नरः ।
तस्माद्यत्नात्परिज्ञेयश्चिह्नैरेतैर्विचक्षणैः ॥ २१२ ॥

अन्यच्च—

प्रसन्नवदनो हृष्टः स्पष्टवाक्यः सरोषदृक् ।
संभायां वक्ति साऽमर्षं साऽवष्टम्भो नरः शुचिः ॥ २१३ ॥

तदेवं [2]दुष्टचरित्रलक्षणो दृश्यते, स्त्रीधर्षणाद्वध्य इति । [3]तच्छूलेऽयमारोप्यताम्'-इति ।

अथ वध्यस्थाने नीयमानं तमवलोक्य देवशर्मा तान् धर्माधिकृतान् गत्वा प्रोवाच—'भो ! भोः !, अन्यायेनैष वराको वध्यते नापितः । साधुसमाचार एषः । तच्छ्रूयतां मे वाक्यम्—

'जम्बुको हुडयुद्धेन, वयं चाऽऽषाढभूतिना ।
दूतिका परकार्येण, त्रयो दोषाः स्वयङ्कृताः ॥' इति ।

अथ ते सभ्या ऊचुः-भो भगवन् ! कथमेतत् ?' । ततश्च देवशर्मा तेषां त्रयाणामपि वृत्तान्तं विस्तरेणाऽकथयत् ।

तदाकर्ण्य सुविस्मितमनसस्ते नापितं विमोच्य मिथः प्रोचुः-अहो !

भूरि = विपुलम् । ललाटे स्वेदं भजतीति–ललाटस्वेदभाग् = प्रस्वेदाञ्चित-ललाटपट्टः । सामर्षं = क्रोधोद्धतं । सावष्टम्भः = सधैर्यः । शुचिः = निर्दोषः । सभायां = संसदि । ('कचहरी' में) ॥ २१३ ॥

दुष्टचरित्रस्य यानि लक्षणानि तानि सन्त्यस्यासौ तथा । स्त्रीधर्षणात् = स्त्रीपीडनात् । शूले = वधशूले ('शूली पर') ।

धर्माधिकृतान् = धर्माधिकरणस्थान् । साधुसमाचारः = निर्दोषः ।

---

१ 'कम्पमानोऽप्यधोऽवेक्षी पापं प्राप्तः' । २ 'दुष्टचारित्रः' । ३ 'शूलायाम्' ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'अवध्यो ब्राह्मणो बालः स्त्री तपस्वी च रोगभाक् ।
विहिता व्यङ्गिता तेषामपराधे [1]महत्यपि' ॥२१४॥

तदस्या नासिकाच्छेदः [2]स्वकर्मणा हि संवृत्तः । ततो राजनिग्रहस्तु कर्णच्छेदः कार्यः । तथानुष्ठिते देवशर्मापि [3]वित्तनाशसमुद्भूतशोकरहितः पुनरपि स्वकीयं मठाऽऽयतनं जगाम । अतोऽहं ब्रवीमि-'जम्बुको हुड-युद्धेन-' इति ।

करटक-आह-'अथैवंविधे व्यतिकरे किं कर्तव्यमावयोः' ? ।

दमनकोऽब्रवीत्-'एवंविधेऽपि समये मम बुद्धिस्फुरणं भविष्यति, येन सञ्जीवकं प्रभोर्विश्लेषयिष्यामि' ।

उक्तञ्च यतः—

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता ।
बुद्धिर्बुद्धिमतः[4] सृष्टा हन्ति राष्ट्रं सनायकम् ॥२१५॥

ततोऽहं मायाप्रपञ्चेन[5] (गुप्तमाश्रित्य ?) तं स्फोटयिष्यामि ।

महत्यपि अपराधे तेषां = ब्राह्मणादीनां, व्यङ्गिता = नासिकाच्छेदादिना विकलाङ्गता । विहिता = धर्मशास्त्रबोधिता, न तु वधः ॥२१४॥

तत्=स्त्रीत्वेनाऽवध्यत्वात् । वित्तनाशेति । धननाशोद्भूतदुःखरहितः सन्नित्यर्थः । मठायतनं = निवासभूतं स्वमठम् ।

व्यतिकरे = व्यत्यासे । [गड़बड़ में] । प्रभोः = राज्ञः सिंहात् । विश्लेषयिष्यामि = भेदयिष्यामि ।

धनुष्मता = धानुष्केण । इषुः = बाणः । मुक्तः = क्षिप्तः सन् । एकमपि नरं कदाचित् हन्यात्, कदाचिच्च न वा हन्यात् । लक्ष्याच्च्युतश्चेत्-एकमपि न हन्यादित्यर्थः । परन्तु बुद्धिमतः=नीतिकुशलात् । सृष्टा=उद्भूता, कुशलप्रयुक्ता । बुद्धिः=मतिस्तु—सनायकं=साधिपं । राष्ट्रं=राज्यमपि । हन्ति=विनाशयितुं शक्नोति ॥२१५॥

---

१ 'गरीयास' । २ 'स्वकर्मवशादेव नासिकाच्छेदः' ।
३ दृष्टान्तद्वयेन स्वहृदयं संस्थाप्य स्वकीयमठायतनम्' ।
४ 'बुद्धिमता' । ५ 'मायाप्रपञ्चम्।' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करटक आह—भद्र! यदि कथमपि तव मायाप्रवेशं पिङ्गलको ज्ञास्यति, सञ्जीवको वा, तदा नूनं ते विघात एव।'

सोऽब्रवीत्-'तात! मैवं वद, गूढबुद्धिभिरापत्काले विधुरेऽपि दैवे बुद्धिः प्रयोक्तव्या। नोद्यमस्त्याज्यः। कदाचिद् घुणाक्षरन्यायेन बुद्धेः साम्राज्यं भवति। उक्तञ्च—

त्याज्यं न दैवे विधुरेऽपि धैर्यं,
धैर्यात्कदाचित्स्थितिमाप्नुयात्सः।
जाते समुद्रेऽपि हि पोतभङ्गे,
सांयात्रिको वाञ्छति तर्त्तुमेव ॥२१६॥

उद्योगिनं[1] पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी—
'दैवेन देय'मिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः! ॥२१७॥

तदेवं ज्ञात्वा सुगूढबुद्धिप्रभावेण-यथा तौ द्वावपि न ज्ञास्यतस्तथा मिथो वियोजयिष्यामि।

मायाप्रवेशं = मायाविनियोगम्। सञ्जीवको वा—'ज्ञास्यती' ति शेषः। तदा = तर्हि। नूनम् = अवश्यम्। विघातः = तव विनाश एव भविष्यति। विधुरेऽपि दैवे = विरुद्धेऽपि भाग्ये। बुद्धिः = कूटनीतिः, धर्मनीतिश्च। उद्यमः = उद्योगः।

घुणाक्षरन्यायेनेति। यथा—घुणो नाम कीटः काष्ठं भक्षयन् ककारादि-वर्णतुल्यां छिद्रपङ्क्तिं कदाचिद्रचयति, तथैव विधुरेपि काले कदाचित्कार्यसिद्धेः सम्भव इत्याशयः।

स्थितिं = समीहितसिद्धिम्। सः = धीरः। पोतभङ्गे = नौभङ्गे जातेऽपि। सांयात्रिकः = पोतवणिक्। तर्त्तुमेव वाञ्छति = पुनरपि समुद्रतरणमाचरति पोतान्तरेण। तदेव वाणिज्यं पुनरपि कुरुते इत्याशयः ॥२१६॥

---

१ 'सततमत्र समेति लक्ष्मीर्दैवं हि दैवमिति', 'नित्योद्यतस्य पुरुषस्य भवेद्धि लक्ष्मीर्दैवं हि दैवमिति' इति च पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपरञ्च-सदोद्यतानां देवा अपि सहायिनो भवन्ति ।

उक्तञ्च—

कृते विनिश्चये पुंसां देवा यान्ति सहायताम् ।
विष्णुश्चक्रं गरुत्मांश्च कौलिकस्य यथाऽऽहवे ॥२१८॥

किञ्च--

सुप्रयुक्तस्य दम्भस्य ब्रह्माऽप्यन्तं न गच्छति ।
कौलिको विष्णुरूपेण राजकन्यां निषेवते ॥ २१९ ॥

करटक आह—'कथमेतत् ? । सोऽब्रवीत्—

५ मिथ्याविष्णु-कौलिककथा[1] ।

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने कौलिक-रथकारौ मित्रे प्रतिवसतः स्म । तत्र च तौ बाल्यात्प्रभृति सहचारिणौ परस्परमतीव स्नेहपरौ सदैकस्थानविहारिणौ कालं नयतः ।

अथ कदाचित्तत्राऽधिष्ठाने कस्मिंश्चिद्देवाऽऽयतने यात्रामहोत्सवः संवृत्तः । तत्र च नटनर्तकचारणसङ्कुले नानादेशाऽऽगतजनावृते तौ सहचरौ भ्रमन्तौ काञ्चिद्राजकन्यां करेणुकाऽऽरूढां सर्वलक्षणसनाथां कञ्चुकिवर्षवरपरिवारितां देवतादर्शनार्थं समायातां दृष्टवन्तौ ।

अथाऽसौ कौलिकस्तां दृष्ट्वा विषार्दित इव, दुष्टग्रहगृहीत इव, काम-

---

तौ द्वौ = सिंहवृषभौ । दम्भस्य = मायायाः । निषेवते = उपभुङ्क्ते ॥२१८॥

अधिष्ठाने = नगरे । 'अधिष्ठानं रथस्याङ्गे प्रभावेऽध्यासने पुरे'—इत्यजयः । यात्रामहोत्सवः = दर्शनयात्रोत्सवः । ['मेला'] । नटाः = भरताः । नर्त्तकाः = नृत्योपजीविनः । चारणाः = स्तुतिपाठकाः । तैः—सङ्कुले = व्याप्ते । करेणुका = हस्तिनी । सर्वलक्षणसनाथां=सर्वलक्षणोपेताम् । कञ्चुकिभिः=अन्तःपुरचरैर्वृद्धैः । वर्षवरैः = क्लीबैः । परिवारितां = सहिताम् । विषार्दितः = विषपीडितः ।

---

१ इयं कथाऽश्लीलतया काशिकमध्यमपरीक्षादिपाठ्यांशबहिर्भूता ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शरैर्हन्यमानः सहसा भूतले निपपात। अथ तं तदवस्थमवलोक्य रथकारस्तद्दुःखदुःखितः–आप्तपुरुषैस्तं समुत्क्षिप्य स्वगृहमानाययत्।

तत्र च विविधैः शीतोपचारैश्चिकित्सकोपदिष्टैर्मन्त्रवादिभिरुपचर्यमाणश्चिरात्कथञ्चित्सचेतनो बभूव।

ततो रथकारेण पृष्टः–'भो मित्र! किमेवं त्वमकस्माद्विचेतनः सञ्जातः?। तत्कथ्यतामात्मस्वरूपम्'।

स आह—'वयस्य! यद्येवं, तच्छृणु मे रहस्यं येन सर्वामात्मवेदनां त्वां वदामि–'यदि त्वं मां सुहृदं मन्यसे, ततः काष्ठप्रदानेन प्रसादः क्रियतां, क्षम्यतां यद्वा किञ्चित्प्रणयातिरेकादयुक्तं तव मयाऽनुष्ठितम्'।

सोऽपि तदाकर्ण्य बाष्पपिहितनयनः सगद्गदमुवाच–'वयस्य! यत्किंचिद्दुःखकारणं तद्वद, येन प्रतीकारः क्रियते–यदि शक्यते कर्त्तुम्। उक्तञ्च—

औषधानां, सुमन्त्राणां, बुद्धेश्चैव, महात्मनाम्।
असाध्यं नास्ति लोकेऽत्र यद्ब्रह्माण्डस्य मध्यगम् ॥२१९॥

दुष्टग्रहगृहीतः = पिशाचादिपीडित इव। सहसा = अकस्मात्। तदवस्थं = भूमौ पतितम्। तं = स्वसुहृदम्। तद्दुःखदुःखितः = स्वमित्रकौलिकदुःखेन दुःखितः सन्।

आप्तपुरुषैः = स्वबन्धुबान्धवैः। समुत्क्षिप्य = उत्थाप्य। शीतोपचारैः = कामोपतापशान्त्यर्थं चिकित्सकोपदिष्टैश्चन्दनादिशीतलोपचारैः। मन्त्रवादिभिः = तान्त्रिकैश्च। ['ओझा']। आत्मस्वरूपम् = स्वरहस्यम्, स्वास्थ्यं वा। यद्येवं = यद्याग्रहस्ते श्रोतुम्। काष्ठप्रदानेन = चितार्थं काष्ठभारदानेन। प्रसादः = अनुग्रहः। अहमशक्यप्रतीकारेणाऽनेन दुःखेन दुःखितश्चिताप्रवेशेन मर्त्तुमिच्छामीत्यर्थः। यद्वा = यच्च किञ्चित्। प्रणयातिरेकात् = अतिस्नेहात्।

सोऽपि = रथकारोऽपि। बाष्पपिहितनयनः = साश्रुलोचनः।

औषधानामिति। औषधानां = रसायनादिदिव्यौषधानामोषधीनाञ्च। सुमन्त्राणां = सिद्धमन्त्रतन्त्रयन्त्रादीनां, सुमन्त्रितानाञ्च। महात्मनां = योगिनां, सिद्धानां, तपस्विनाञ्च। बुद्धेश्च = सुमतेश्च। ब्रह्माण्डमध्यगं किञ्चिदपि वस्तु,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तदेषां चतुर्णां यदि साध्यं भविष्यति तदाऽहं साधयिष्यामि। कौलिक आह—'वयस्य ! एतेषामन्येषामपि सहस्राणामुपायानामसाध्यं तन्मे दुःखं, तस्मान्मम मरणे मा कालक्षेपं कुरु।'

रथकार आह—भो ! यद्यप्यसाध्यं तथापि निवेदय,—येनाऽहमपि तदसाध्यं मत्वा त्वया सह वह्नौ प्रविशामि, न (तु) क्षणमपि त्वद्वियोगं सहिष्ये, एष मे निश्चयः।

कौलिक आह—'वयस्य ! याऽसौ राजकन्या करेणुकाऽऽरूढा तत्रोत्सवे दृष्टा, तस्या दर्शनाऽनन्तरं मकरध्वजेन ममेयमवस्था विहिता। तन्न शक्नोमि तद्वेदनां सोढुम्।

तथा चोक्तम्—

मत्तेभकुम्भपरिणाहिनि कुङ्कुमार्द्रे
तस्याः पयोधरयुगे रतखेदखिन्नः।
वक्षो निधाय भुजपञ्जरमध्यवर्ती
स्वप्स्ये [1]कदा क्षणमवाप्य तदीयसङ्गम् ॥२२०॥

कार्यं वा असाध्यं नास्ति। औषधादेरन्यतमस्याऽसाध्यं किञ्चिदपि नास्ति, यज्जगति वर्त्तत इत्यर्थः ॥ २१९ ॥

एषाम्=औषधादीनाम्। अन्येषाम्=इतोऽतिरिक्तानामपि। तत्=मयाऽनुभूयमानम्। मकरध्वजः=कामः। तद्वेदनां=कामवेदनाम्।

मत्तेति। मत्तगजकुम्भविशाले, कुङ्कुमचर्चिते, तस्या=नायिकायाः। पयोधरयुगे=स्तनद्वये। रतखेदखिन्नः=सुरतखेदक्लान्तः। तया सह सुरतयुद्धं विधाय परिश्रान्त इत्यर्थः। वक्षः=उरः। तदीयभुजयुगलपञ्जरबद्धः सन्। क्षणं तदीयसङ्गमवाप्य कदानु स्वप्स्ये इति मे वितर्क इत्यर्थः ॥ २२० ॥

---

१ 'स्वप्स्यामि किं क्षणमहं क्षणलब्धनिद्रः'—इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा च—

रागी बिम्बाऽधराऽसौ, स्तनकलशयुगं यौवनारूढगर्वं,
नीचा नाभिः प्रकृत्या, कुटिलकमलकं, [1]स्वल्पकं चाऽपि मध्यम् ।
कुर्वन्त्वेतानि नाम प्रसभमिह मनश्चिन्तितान्याशु खेदं,
'यन्मां तस्याः कपोलौ दहत' इति मुहुः स्वच्छकौ तन्न युक्तम् ॥२२१॥

रथकारोऽप्येवं सकामं तद्वचनमाकर्ण्य सस्मितमिदमाह-'वयस्य ! यद्येवं तर्हि दिष्ट्या सिद्धं नः प्रयोजनं, तदद्यैव तया सह समागमः क्रियताम्' इति ।

कौलिक आह—'वयस्य ! यत्र कन्याऽन्तःपुरे वायुं मुक्त्वा नाऽन्यस्य प्रवेशोऽस्ति, तत्र रक्षापुरुषाधिष्ठिते कथं मम तया सह समागमः ! । तत्किं मामसत्यवचनेन विडम्बयसि' ? ।

रथकार आह-'मित्र ! पश्य मे बुद्धिबलम् ।'

एवमभिधाय तत्क्षणात्कीलकसञ्चारिणं वैनतेयं, बाहुयुगलं (च) वरुणवृक्षदारुणा शङ्ख-चक्र-गदा-पद्माऽन्वितं सकिरीटकौस्तुभमघटयत् ।

रागीति । रागी=रक्तः, रागाविष्टश्च । रागः=क्रोधः । स्तनावेव कलशौ, तयोर्युगं ।यौवनेनाऽऽरूढो गर्वो यस्य तत्=यौवनमदमत्तं । नाभिस्तु प्रकृत्या=स्वभावत एव, नीचा,=निम्ना, अधमा च । अलकं=केशाः । 'अलका कुबेरपुर्यामस्त्रियां चूर्णकुन्तले' इति मेदिनी । 'प्रकृत्ये' त्युभयान्वयि । कुटिलकं=वक्रं, क्रूरञ्च । मध्यं=वध्यभागः । स्वल्पकं=तनुतरं, क्षुद्रञ्च । 'स्वल्पकश्चापि मध्यः' इत्यपि पाठः । एतानि=स्वभावतो नीचानि कुटिलानि चाऽलकादीनि मया मनसि चिन्तितानि, प्रसभं=बलात्, खेदं=दुःखम्, आशु=त्वरितं कुर्वन्तु नाम, रागादिदुष्टत्वात् । परन्तु तस्याः=कामिन्याः कपोलौ, स्वच्छावेव स्वच्छकौ=शुद्धौ, निर्दोषौ च, चिन्तितौ यन्मां दहतः=यत् पीडयतः, तदेव तु न युक्तम्=नोचितम् । सज्जनानां, स्वच्छानां च दाहकताया अनुचितत्वादिति भावः ॥२२१॥

कामं=साभिलाषं, कामविकलं वा । दिष्ट्या=भाग्येन । 'दिष्ट्ये'ति हर्षे । नः=अस्माकम् । प्रयोजनम्=अभीष्टम् । विडम्बयसि=वञ्चयसि । कील-(क)-

---

१ स्वल्पकश्चापि मध्यः' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ततस्तस्मिन्कौलिकं समारोप्य विष्णुचिह्नितं कृत्वा, कीलसञ्चरण-विज्ञानं च दर्शयित्वा प्रोवाच-'वयस्य ! अनेन विष्णुरूपेण गत्वा कन्याऽन्तःपुरे निशीथे तां राजकन्यामेकाकिनीं सप्तभूमिकप्रासादप्रान्त-गतां मुग्धस्वभावां त्वां वासुदेवं मन्यमानां स्वकीयमिथ्यावक्रोक्तिभी रञ्जयित्वा वात्स्यायनोक्तविधिना भज ।'

कौलिकोऽपि तदाकर्ण्य तथारूपस्तत्र गत्वा तामाह-'राजपुत्रि ! सुप्ता, किं वा जागर्षि ? । अहं तव कृते समुद्रात्सानुरागो लक्ष्मीं विहायै-वाऽऽगतः, तत्क्रियतां मया सह समागमः'-इति ।

साऽपि (तं) गरुडाऽऽरूढं चतुर्भुजं साऽऽयुधं कौस्तुभोपेतमवलोक्य सविस्मया शयनादुत्थाय प्रोवाच-'भगवन् ! अहं मानुषी कीटिकाऽशुचिः, भगवांस्त्रैलोक्यपावनो वन्दनीयश्च, तत्कथमेतद्युज्यते ?' ।

कौलिक आह—'सुभगे ! सत्यमभिहितं भवत्या, किन्तु राधानाम्नी मे भार्या गोपकुलप्रसूता प्रथममासीत्, सा त्वमत्राऽवतीर्णा, तेनाह-मत्राऽऽयातः ।'

सञ्चारिणं = कुञ्चिकाभ्रमणसञ्चरिष्णुम् । ('चाबीसे चलनेवाला') । वैनतेयं = गरुडं । वरुणः = वृक्षभेदः । 'वायुजवृक्षे'ति केचित् पठन्ति । सकिरीटं=मुकुट-सहितं । कौस्तुभं = रत्नविशेषम् । 'सकिरीटे'ति बाहुयुगलविशेषणम । अघट-यत् = चकार ।

तस्मिन्=यन्त्रगरुडे । कीलकस्य=कुञ्चिकायाः । यत्सञ्चरणं=भ्रामणं । तस्य विज्ञानं=कौशलं । दर्शयित्वा=शिक्षयित्वा । अनेन = कृत्रिमेण, सप्तभूमिकस्य = सप्ततलस्य ('सात मंजिला') । प्रासादस्य = हर्म्यस्य । ('महल के') । प्रान्ते= उपरिभागे । ('छतपर') । गतां=स्थिताम् । मुग्धस्वभावां = बालतया सरल-स्वभावाम् । मुग्धाम् । अज्ञातकामोपभोगसुखाम् । वासुदेवं=कृष्णं । रञ्जयित्वा= वशीकृत्य । वात्स्यायनोक्तविधिना = कामशास्त्रोक्तेन मार्गेण । भज = उपभुङ्क्ष्व ।

तदाकर्ण्य = तद्वचनं श्रुत्वा । तथारूपः = विष्णुरूपो भूत्वा । तत्र=राजप्रासादे कन्यान्तःपुरे । समुद्रात्=क्षीरसागरात् । साऽनुरागः=त्वत्स्नेहाकृष्टः । सापि=राज-पुत्र्यपि । सविस्मया = आश्चर्यचकिता । कीटिका = कीटसदृशी । अशुचिप्राय-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इत्युक्ता सा प्राह–'भगवन् ! यद्येवं तन्मे तातं प्रार्थय, सोऽप्यविकल्पं मां तुभ्यं [1]प्रयच्छति'।

कौलिक आह– सुभगे ! नाऽहं दर्शनपथं मानुषाणां गच्छामि, किं पुनरालापकरणं, (तत्–) त्वं गान्धर्वेण विवाहेनाऽऽत्मानं प्रयच्छ, नो चेच्छापं दत्वा सान्वयं ते पितरं भस्मसात्करिष्यामि' इति।

एवमभिधाय, गरुडादवतीर्य, सव्ये पाणौ गृहीत्वा, तां सभयां सलज्जां वेपमानां शय्यायामनयत्। ततश्च रात्रिशेषं यावद्वात्स्यायनोक्तविधिना निषेव्य, प्रत्यूषे स्वगृहमलक्षितो जगाम। एवं तस्य तां नित्यं सेवमानस्य कालो याति।

अथ कदाचित्कञ्चुकिनस्तस्या अधरोष्ठप्रवालखण्डनं दृष्टवा मिथः प्रोचुः—'अहो ! पश्यताऽस्या राजकन्यायाः पुरुषोपभुक्ताया इव शरीराऽवयवा विभाव्यन्ते, तत्कथमयं सुरक्षितेऽप्यस्मिन्गृहे एवंविधो व्यवहारः ?। तद्राज्ञे निवेदयामः।'

एवं निश्चित्य सर्वे समेत्य राजानं प्रोचुः–'देव ! वयं न विद्मः, परं सुरक्षितेऽपि कन्यान्तःपुरे कश्चित्प्रविशति, तद्देवः प्रमाणम्' इति।

तच्छ्रुत्वा राजाऽतीव व्याकुलितचित्तो व्यचिन्तयत्—

मनुष्यदेहधारिणी। एतत्=भवदुक्तम्। अत्र=राजगृहे। तत्=तर्हि। तातं=मत्पितरम्। अविकल्पं=निःसंशयम्। न दर्शनपथं गच्छामि=न चक्षुर्विषयो भवामि। आलापकरणं=संभाषणादिकं। किं पुनः=दूरापास्तमेव। गान्धर्वेण=स्वेच्छारचितेन विवाहेन। सान्वयं=सकुलं। भस्मसात्करिष्यामि=विनाशयिष्यामि।

सव्ये=वामे वेपमानां=लज्जाभयादिना कम्पमानाम्। निषेव्य=उपभुज्य। प्रत्यूषे=प्रभाते। अलक्षितः=कन्यान्तःपुररक्षकैरदृष्ट एव। कालो याति=भूयान् कालो जगाम।

अथ=गते बहुतिथे काले। कञ्चुकिनः=अन्तःपुररक्षकाः। अधरोष्ठप्रवालखण्डनम्=कोमलाऽधरे दन्तक्षतं। पुरुषोपभुक्तायाः=संसृष्टमैथुनायाः। एवंविधो व्यवहारः=परपुरुषसम्पर्कः। देवः प्रमाणम्=अत्र यदुचितं तद्विदधातु भवान्।

---

१ 'प्रदास्यति' इति पाठो भवेत्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'पुत्री'ति जाता महतीह चिन्ता,
'कस्मै प्रदये'ति महान् वितर्कः ।
'दत्ता सुखं प्राप्स्यति वा, न वे'ति,
कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम् ॥२२२॥

नद्यश्च नार्यश्च सदृक्प्रभावा-
स्तुल्यानि कूलानि कुलानि तासाम् ।
तोयैश्च दोषैश्च निपातयन्ति
नद्यो हि कूलानि, कुलानि नार्यः ॥२२३॥

तथा च-

जननी मनो हरति जातवती,
परिवर्द्धते सह शुचा सुहृदाम् ।
परसात्कृताऽपि कुरुते मलिनं,
दुरतिक्रमा दुहितरो विपदः ॥२२४॥

एवं बहुविधं विचिन्त्य देवीं रहःस्थां प्रोवाच-'देवि ! ज्ञायतां किमेते

'कस्मै देये'ति चिन्ता बाधते, 'दत्तापि सुखं प्राप्स्यति नवे'ति, वितर्कः = संशयश्च भवति, अतः कन्याया जन्म महते कष्टायैवेति भावः ॥२२२॥

नार्यः=स्त्रियः । आत्मदोषैः = व्यभिचारादिभिः । कुलानि = पित्रादिकुलानि नाशयन्ति, नद्यश्च तोयैः स्वकूलानि = स्वतटानि नाशयन्तीति सादृश्यं नदी-नार्योरित्यर्थः ॥२२३॥

जातवती=जातमात्रैव, जननीमनो हरति = स्वमातुर्मनः शोकमग्नं करोति । सुहृदां = बन्धूनां, शुचा = शोकेन सहैव, वर्द्धते = वर्द्धमाना बन्धुवर्गं चिन्ताकुलं कुरुते । परसात्कृतापि = वराय प्रदत्तापि । मलिनङ्कुरुते=कुलमुभयं दूषयति । 'व्यभिचारादिदोषै' रिति शेषः । अतो लोकानां दुहितरो नाम=पुत्र्यः खलु, दुरतिक्रमा विपद एव । अप्रतिविधेयविपत्तिरूपा भवन्ति कन्यका इत्यर्थः ॥२२४॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कञ्चुकिनो वदन्ति! कस्य कृतान्तः कुपितो येनैतदेवं क्रियते ?।'

देव्यपि तदाकर्ण्य व्याकुलीभूता सत्वरं कन्याऽन्तःपुरे गत्वा तां खण्डिताऽधरां नखविलिखितशरीराऽवयवां दुहितरमपश्यत्।

आह च–'आः पापे कुलकलङ्ककारिणि! किमेवं शीलखण्डनं कृतम् ?। कोऽयं कृतान्ताऽवलोकितस्त्वत्सकाशमभ्येति ?, तत्कथ्यतां ममाऽग्रे सत्यम्'।

—इति कोपाऽऽटोपविशङ्कटं वदत्यां मातरि राजपुत्री भयलज्जानताऽऽननं प्रोवाच–'अम्ब ! साक्षान्नारायणः प्रत्यहं गरुडारूढो निशि समायाति चेदसत्यं मम वाक्यं, तत्स्वचक्षुषा विलोकयतु निगूढतरा निशीथे भगवन्तं रमाकान्तम्।'

तच्छ्रुत्वा साऽपि प्रहसितवदना पुलकाऽङ्कितसर्वाङ्गी सत्वरं गत्वा राजानमूचे–'देव ! दिष्ट्या वर्द्धसे ! नित्यमेव निशीथे भगवान्नारायणः कन्यकापार्श्वेऽभ्येति। तेन गान्धर्वविवाहेन सा विवाहिता। तदद्य त्वया मया च रात्रौ वातायनगताभ्यां निशीथे द्रष्टव्यः, यतो न स मानुषैः सहाऽऽलापं करोति।'

तच्छ्रुत्वा हर्षितस्य राज्ञस्तद्दिनं वर्षशतप्रायमिव कथञ्चिज्जगाम।

देवीं=स्वपट्टमहिषीं। रहःस्थां=विजनस्थाम्। कृतान्तः कुपितः=यमः कुपितः। कः खलु मत्कोपकृशानुदग्धोऽचिरात्पञ्चत्वं गमिष्यतीति यावत्। नखविलिखितशरीरावयवां=नखक्षतावलिविलिखितस्तनादिप्रदेशाम्। शीलखण्डनं=चरित्रभ्रंशः।

कृतान्तावलोकितः = मृत्युपरवशः। इति = इत्थं, कोपस्याटोपेन = आवेशेन, विशङ्कटं = विपुलं, भीषणञ्च। 'विशङ्कटं पृथु बृहद्विशालं विपुलं महत्' इत्यमरः। यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम्। भयेन लज्जया च नतमाननं यस्मिन् कर्मणि, तद्यथा स्यात्तथा—प्रोवाच = जगाद। निगूढतरा = प्रच्छन्नतरा भूत्वा। निशीथे = अर्धरात्रे।

दिष्ट्या = सौभाग्येन। वर्द्धसे = त्वं सौभाग्यवानसीत्यर्थः। तेन=विष्णुना। सा = तव कन्या। वातायनगताभ्यां=गवाक्षस्थिताभ्याम्। सः=भगवान्नारायणः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ततस्तु रात्रौ निभृतो भूत्वा राज्ञीसहितो राजा वातायनस्थो गगनाऽऽसक्तदृष्टिर्यावत्तिष्ठति, तावत्तस्मिन् समये गरुडाऽऽरूढं तं शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-हस्तं यथोक्तचिह्नाऽङ्कितं व्योम्नोऽवतरन्तं नारायणमपश्यत् ।

ततः सुधापूरप्लावितमिवाऽऽत्मानं मन्यमानस्तामुवाच—'प्रिये! नाऽस्त्यन्यो धन्यतरो लोके मत्तस्त्वत्तश्च, यत्प्रसूतिं नारायणो भजते, तत्सिद्धाः सर्वेऽस्माकं मनोरथाः । अधुना जामातृप्रभावेण सकलामपि वसुमतीं वश्यां करिष्यामि ।'

एवं निश्चत्य सर्वैः सीमाऽधिपैः सह मर्यादाव्यतिक्रममकरोत् । ते च तं मर्यादाव्यतिक्रमेण वर्त्तमानमालोक्य सर्वे समेत्य तेन सह विग्रहं चक्रुः ।

अत्राऽन्तरे स राजा देवीमुखेन तां दुहितरमुवाच-'पुत्रि! त्वयि दुहितरि वर्त्तमानायां, नारायणे भगवति जामातरि (च) स्थिते, तत्किमेवं युज्यते-यत्सर्वे पार्थिवा मया सह विग्रहं कुर्वन्ति ? । तत्संबोध्योऽद्य त्वया निजभर्ता, यथा मम शत्रून्व्यापादयति ।'

ततस्तया स कौलिको रात्रौ सविनयमभिहितः-'भगवन्! त्वयि जामातरि स्थिते मम तातो यच्छत्रुभिः परिभूयते तन्न युक्तम् । तत्प्रसादं कृत्वा सर्वांस्ताञ्छत्रून् व्यापादय ।

कौलिक आह-'सुभगे! कियन्मात्रास्त्वेते तव पितुः शत्रवः ?,

निभृतः = सुगूढः । गगनाऽऽसक्तदृष्टिः=आकाशतलप्रहितलोचनः । तस्मिन्समये = निशीथे । यथोक्तचिह्नाङ्कितं = शङ्खचक्राद्यलङ्कृतम् , व्योम्नः = आकाशात्, सुधापूरप्लावितमिव = अमृतनिर्झरसिक्तमिव । यत्प्रसूतिं=ययोरपत्यम् । पुत्रीमिति यावत् । भजते = सेवते । जामातृप्रभावेण = श्रीमन्नारायणप्रभावेण । वसुमतीं = पृथ्वीम् । सीमाधिपैः=सीमान्तराजैः । मर्यादाव्यतिक्रमं = मर्यादोल्लङ्घनेन सन्धिभङ्गकलहम् । समेत्य=मिलित्वा, विग्रहं युद्धम् । देवीमुखेन=राजमहिषीद्वारा । स्थिते=वर्त्तमाने सति । 'मया सह सर्वे पार्थिवा विग्रहं कुर्वन्ती' त्येवं किं युज्यते ? । न युज्यते इत्यर्थः । सम्बोध्यः=प्रार्थनीयः । प्रसादं=कृपाम् । व्यापादय = विनाशय । कियन्मात्राः=कियन्तः ? । अत्यल्पा एवेति यावत् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तद्विश्वस्ता भव, क्षणेनापि सुदर्शनचक्रेण सर्वांस्तिलशः खण्डयिष्यामि'।

अथ गच्छता कालेन सर्वदेशतः शत्रुभिरुद्वास्य स राजा प्राकारशेषः कृतः। तथाऽपि वासुदेवरूपधरं कौलिकमजानन् राजा नित्यमेव विशेषतः कर्पूराऽगुरुकस्तूरिकादिपरिमलविशेषान्नानाप्रकारवस्त्र-पुष्प-भक्ष्य-पेयांश्च प्रेषयन् दुहितृमुखेन तमूचे-'भगवन्! प्रभाते नूनं स्थानभङ्गो भविष्यति, यतो यवसेन्धनक्षयः सञ्जातः, तथा सर्वोऽपि जनः प्रहारैर्जर्जरितदेहः संवृत्तो योद्धुमक्षमः, प्रचुरो मृतश्च। तदेवं ज्ञात्वाऽत्र काले यदुचितं भवति तद्विधेयम्'-इति।

तच्छ्रुत्वा कौलिकोऽप्यचिन्तयत्—'स्थानभङ्गे जाते ममाऽनया सह वियोगो भविष्यति, तस्माद्गरुडमारुह्य सायुधमात्मानमाकाशे दर्शयामि, कदाचिन्मां वासुदेवं मन्यमानास्ते साऽऽशङ्का राज्ञो योद्धृभिर्हन्यन्ते,। उक्तञ्च-

'निर्विषेणाऽपि सर्पेण कर्त्तव्या महती फटा।
विषं भवतु मा वाऽस्तु, फटाऽऽटोपो भयङ्करः' ॥ २२५ ॥

अथ यदि मम स्थानार्थमुद्यतस्य मृत्युर्भविष्यति, तदपि सुन्दरम्।

गच्छता कालेन = अल्पैरेव दिनैः। उद्वास्य=पीडयित्वा, निष्कास्य, स्वाधिकारं कृत्वा वा। प्राकारशेषः=एकदुर्गमात्राश्रयः। अवरुद्धः सर्वत इति यावत्।

कौलिकमजानन्='कौलिकोऽयं नारायणरूपेण मत्कन्यामुपभुंक्ते' इत्येवं तत्त्वतः कौलिकमजानन्। नूनम्=अवश्यं। स्थानभङ्गः=दुर्गनाशः। दुर्गे शत्रूणामधिकारो भविष्यतीति यावत्। यवसेन्धनक्षयः = घासकाष्ठादिसकलोपकरणक्षयः। जनः=सैनिकलोकः। जर्जरितदेहः=विशीर्णशरीरः। संवृत्तः=जातः। प्रचुरः = भूयांस्तु। मृतः=मृत एव। अनया=राजकन्यया। ते=शत्रवः। राज्ञः = अस्मच्छ्वशुरस्य राज्ञः। योद्धभिः=भटैः।

निर्विषेण = विषशून्येनापि। सर्पेण—महती = नितरां भीतिदा। फटा=फणासंनिवेशाटोपः। विषाऽभावेऽपि फटाडम्बरेणैव लोकानां भयजननं भविष्यतीत्याशयः। 'फणे'ति, 'मा भूया'दिति च पाठान्तरम् ॥ २२५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उक्तञ्च -

'गवामर्थे ब्राह्मणार्थे स्वाम्यर्थे स्त्रीकृतेऽथवा ।
स्थानार्थे यस्त्यजेत्प्राणांस्तस्य लोकाः सनातनाः ॥ २२६ ॥
चन्द्रे मण्डलसंस्थे विगृह्यते राहुणा दिनाधीशः ।
शरणागतेन सार्द्धं विपदपि तेजस्विनां श्लाघ्या ॥ २२७ ॥

एवं निश्चित्य प्रत्यूषे दन्तधावनं कृत्वा तां प्रोवाच-'सुभगे ! समस्तैः शत्रुभिर्हतैरन्नं, पानं चाऽऽस्वादयिष्यामि । किं बहुना—त्वयापि सह सङ्गमं ततः करिष्यामि । परं वाच्यस्त्वयाऽऽत्मपिता यत्प्रभाते प्रभूतेन सैन्येन सह नगरान्निष्क्रम्य योद्धव्यम् । अहञ्चाकाशस्थित एव सर्वांस्तान्निस्तेजसः करिष्यामि । पश्चात्सुखेन भवता हन्तव्याः ।

यदि पुनरहं तान्स्वयमेव सूदयामि तत्तेषां पापात्मनां वैकुण्ठीया गतिः स्यात् । तस्मात्ते तथा कर्तव्या, यथा पलायन्तो हन्यमानाः स्वर्गं न गच्छन्ति ।'

मम = कौलिकस्य । स्थानार्थे = दुर्गरक्षणार्थम् । उद्यतस्य=युद्धं कुर्वाणस्य । तदपि=मरणमपि । गवामर्थे=गवां रक्षणार्थं । ब्राह्मणार्थे=द्विजरक्षार्थम् । स्वाम्यर्थे = प्रभुकार्यसिद्धये । स्त्रीकृते=स्त्रीरत्नलाभार्थञ्च । तद्रक्षार्थं वा । तस्य—सनातनाः = अक्षयाः । लोकाः = ब्रह्मलोकादयो भवन्तीत्यर्थः ।। २२६ ॥

चन्द्रेऽमावास्यायां-स्वमण्डलसंस्थे = स्वाश्रिते सति, दिनाधीशः = सूर्यः, राहुणा = स्वर्भानुना, विगृह्यते = युध्यते । शरणागतरक्षणाय महान्तस्तेजस्विनो विपदमपि अनुभवन्ति—इत्यर्थः । चन्द्रोऽमावास्यायां सूर्यमण्डलमुपयातीति, सूर्यग्रहणञ्चाऽमावास्यायामेव भवतीति च प्रसिद्धम् । मण्डलं = सूर्यबिम्बम्, स्वराष्ट्रञ्च ।। १२७ ॥

तां = राजपुत्रीम् । सुभगे = सौभाग्यशालिनि !, प्रिये ! । आत्मपिता = स्वजनकः । प्रभूतेन = अतिमहता । निस्तेजसः = शक्तिहीनान् । सुखेन = अनायासेन । सूदयामि = मारयामि । वैकुण्ठलोकप्राप्तिः । ते = दुष्टास्ते राजानः । पलायन्ता हन्यमानाः = भीता दश दिशो द्रवन्तस्त्वत्पित्रा हन्यमानाः । 'पलायन्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

साऽपि तदाकर्ण्य पितुः समीपं गत्वा सर्वं वृत्तान्तं न्यवेदयत्। राजापि तस्या वाक्यं श्रद्दधानः प्रत्यूषे समुत्थाय सुसंनद्धसैन्यो युद्धार्थं निश्चक्राम। कौलिकोऽपि मरणे कृतनिश्चयश्चक्रपाणिर्गगनगतिर्गरुडाऽऽरूढो युद्धाय प्रस्थितः।

अत्रान्तरे भगवता नारायणेनातीताऽनागतवर्तमानवेदिना स्मृतमात्रो वैनतेयः संप्राप्तो विहस्य प्रोक्तः–'भो गरुत्मन्! जानासि त्वं यन्मम रूपेण कौलिको दारुमयगरुडे समारूढो राजकन्यां कामयते ?'

सोऽब्रवीत्–'देव! सर्वं ज्ञायते तच्चेष्टितम्, तत्किं कुर्मः साम्प्रतम् ?'।

श्रीभगवानाह—'अद्य कौलिको मरणे कृतनिश्चयो विहितनियमो युद्धार्थं विनिर्गतः। स नूनं प्रधानक्षत्रियशराहतो निधनमेष्यति, तस्मिन्हते सर्वो जनो वदिष्यति, यत्–'प्रभूतक्षत्रियैर्मिलित्वा वासुदेवो, गरुडश्च निपातितः'। ततः परं लोकोऽयमावयोः पूजां न करिष्यति। ततस्त्वं द्रुततरं दारुमयगरुडे सङ्क्रमणं कुरु। चक्रं चक्रे प्रविशतु। अहमपि कौलिकशरीरे प्रवेशं करिष्यामि-येन स शत्रून्व्यापादयति। ततश्च शत्रुवधादावयोर्माहात्म्यवृद्धिः स्यात्।

अथ गरुडे 'तथे'ति प्रतिपन्ने श्रीभगवान्नारायणस्तच्छरीरे संक्रमणमकरोत्। ततो भगवन्माहात्म्येन गगनस्थः स कौलिकः शङ्खचक्रगदाचापचिह्नितः क्षणादेव लीलयैव समस्तानपि प्रधानक्षत्रियान्निस्तेजसश्चकार। ततस्तेन राज्ञा स्वसैन्यपरिवृतेन जिता, निहताश्च ते सर्वेऽपि

यदि हन्यते, तदा न तस्य स्वर्गगतिर्भवतीति'ति धर्मशास्त्रव्यवस्थितिः। आकर्ण्य=श्रुत्वा। गगनगतिः=आकाशसञ्चारी। अतीतानागतवर्त्तमानवेदिना=सर्वज्ञेन। वैनतेयः=गरुडः। कामयते=उपभुङ्क्ते। चेष्टितम्=आचरणम्। विहितनियमः=कृतप्रतिज्ञः।

प्रधानक्षत्रियशराहतः=श्रेष्ठयोधवीरबाणताडितः सन्। निधनं=मृत्यम्। वासुदेवः=विष्णुः। सङ्क्रमणं=सञ्चारम्। प्रवेशमिति यावत्। चक्रं=सुदर्शनचक्रम्। चक्रे=काष्ठचक्रे। माहात्म्यवृद्धिः=प्रभाववृद्धिः। तथा=युक्तम्। इति प्रतिपन्ने=

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शत्रवः। जातश्च लोकमध्ये प्रवादो यथा–'अनेन विष्णुजामातृप्रभावेण सर्वे शत्रवो निहताः–'इति।

कौलिकोऽपि तान्हतान्दृष्ट्वा प्रमुदितमना गगनादवतीर्णो यावत्तावद्राजाऽमात्यपौरलोकास्तं नगरवास्तव्यं कौलिकं पश्यन्ति–ततः पृष्टः 'किमेतत्' ? इति। ततः सोऽपि मूलादारभ्य सर्वं प्राग्वृत्तान्तं न्यवेदयत्।

ततश्च कौलिकसाहसानुरञ्जितमनसा शत्रुवधादवाप्ततेजसा राज्ञा सा राजकन्या सकलजनप्रत्यक्षं विवाहविधिना तस्मै समर्पिता, देशश्च प्रदत्तः। कौलिकोऽपि तया सार्द्धं पञ्चप्रकारं जीवलोकसारं विषयसुखमनुभवन्कालं निनाय। अतः सुष्ठूच्यते—'सुप्रयुक्तस्य दम्भस्य—' इति ॥❀।

तच्छ्रुत्वा करटक आह–भद्र ! अस्त्येवं, परं तथापि महन्मे भयं–यतो बुद्धिमान्सञ्जीवको, रौद्रश्च सिंहः। यद्यपि ते बुद्धिप्रागल्भ्यं, तथापि त्वं पिङ्गलकात्तं वियोजयितुमसमर्थ एव।'

दमनक आह–भ्रातः ! असमर्थोऽपि समर्थ एव।

उक्तञ्च—

उपायेन हि यत्कुर्यात्तन्न शक्यं पराक्रमैः।
काक्या कनकसूत्रेण कृष्णसर्पो निपातितः ॥२२८॥

करटक आह–कथमेतत् ?। सोऽब्रवीत्—

इत्थं मन्त्रं ग्राहिते सति। तच्छरीरे=कौलिकदेहे। लीलयैव=क्रीडयेव। यथा=यत्। अनेन=राज्ञा। प्रमुदितमनाः=प्रसन्नचित्तः।

राजेति। राजा, अमात्यवर्गः, पुरवासिनश्च, तं 'कौलिकोऽय' मिति निश्चित्य यावत्पृच्छन्ति तावत्तेन सर्वो वृत्तान्तो निवेदित इति भावः। कौलिकेति। कौलिकसाहसप्रसन्नचेतसा। पञ्चप्रकारं=पञ्चेन्द्रियग्राह्यं। विषयोपभोगान् भुञ्जानः सुखेन कालं निनायेत्यर्थः। सञ्जीवकः=तन्नामा वृषभः। रौद्र=क्रूरः। तं=वृषभम्।

कनकसूत्रेण=स्वर्णदोरकद्वारा। ('सोने का डोरा')। निपातितः=घातितः॥ २२८॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

६. काकी-(कनकसूत्र)-कृष्णसर्पकथा ।

अस्ति कस्मिंश्चित्प्रदेशे महान् न्यग्रोधपादपः । तत्र वायसदम्पती प्रतिवसतः स्म । अथ तयोः प्रसवकाले वृक्षविवरान्निष्क्रम्य कृष्णसर्पः सदैव तदपत्यानि (असञ्जातक्रियाण्येव) भक्षयति । ततस्तौ निर्वेदादन्य-वृक्षमूलनिवासिनं प्रियसुहृदं शृगालं गत्वोचतुः-'भद्र ! किमेवंविधे सञ्जाते आवयोः कर्तव्यं भवति ?। एवं तावद् दुष्टात्मा कृष्णसर्पो वृक्षविव-रान्निर्गत्याऽऽवयोर्बालकान्भक्षयति । तत्कथ्यतां तद्रक्षार्थं कश्चिदुपायः' ।

यस्य क्षेत्रं नदीतीरे, भार्या च परसङ्गता ।
ससर्पे च गृहे वासः, कथं स्यात्तस्य निर्वृत्तिः ? ॥२२९॥

अन्यच्च—

सर्पयुक्ते गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ।
यद्ग्रामान्ते वसेत्सर्पस्तस्य स्यात्प्राणसंशयः ॥२३०॥

अस्माकमपि तत्रस्थितानां प्रतिदिनं प्राणशंसयः' ।

स आह—'नाऽत्र विषये स्वल्पोऽपि विषादः कार्यः, नूनं स लुब्धो नोपायमन्तरेण वध्यः स्यात् । उक्तञ्च—

उपायेन जयो यादृग्रिपोस्तादृङ् न हेतिभिः ।
उपायज्ञोऽल्पकायोऽपि न शूरैः परिभूयते ॥२३१॥

न्यग्रोधपादपः = वटतरुः । वायसदम्पती = काकमिथुनं । तदपत्यानि = काकार्भकान् । असञ्जातक्रियाणि = उत्पतितुं, गन्तुञ्चाऽसमर्थान्येव । निर्वेदात् = शोकात् । अन्यवृक्षमूलनिवासिनम् = वृक्षान्तरमूलगह्वरनिवासिनम् । एवंविधे = सर्पकृतापत्यविनाशरूपे व्यतिकरे । (विपत्ति में) ।

एवन्तावत् = एवंरीत्या किल । तद्रक्षार्थं = ततः कृष्णसर्पात्स्ववत्सरक्षार्थम् ॥ यस्य = पुंसः । नदीतीरे = सरित्तटे । क्षेत्रं = केदारः । भार्या = पत्नी च । परेण = जारेण । सङ्गता = संसक्ता । ससर्पे = सर्पवति गृहे च यस्य निवासः, तस्य पुंसः कथं = केन प्रकारेण । निर्वृतिः = सुखम् । न केनाऽपि प्रकारेणेत्यर्थः ॥ २२९ ॥

विषादः = शोकः । लुब्धः = काकशावकभक्षणलुब्धः । सः = सर्पः । हेतिभिः =

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा च—

भक्षयित्वा बहून्मत्स्यानुत्तमाऽधममध्यमान् ।
अतिलौल्याद्बकः कश्चिन्मृतः कर्कटकग्रहात् ॥२३२॥

तावूचतुः—'कथमेतत् ?' । सोऽब्रवीत्—

७. बक—कर्कटक-कथा ।

अस्ति कस्मिंश्चिद्वनप्रदेशे नानाजलचरसनाथं महत्सरः । तत्र च कृताश्रयो बक एको वृद्धभावमुपागतो मत्स्यान् व्यापादयितुमसमर्थः । ततश्च क्षुत्क्षामकण्ठः सरस्तीर उपविष्टो मुक्ताफलप्रकरसदृशैरश्रुप्रवाहैर्धरातलमभिषिञ्चन् रुरोद । एकः कुलीरको नानाजलचरसमेतः समेत्य तस्य दुःखेन दुःखितः सादरमिदमूचे–'माम ! किमद्य त्वया यथापूर्वमाहारवृत्तिर्नाऽनुष्ठीयते ?, केवलमश्रुपूर्णनेत्राभ्यां सनिःश्वासेन स्थीयते ! ।

स आह—'वत्स ! सत्यमुपलक्षितं भवता, मया हि मत्स्यादनं प्रति परमवैराग्यतया सांप्रतं प्रायोपवेशनं कृतम्, तेनाहं समीपगतानपि मत्स्यान्न भक्षयामि ।' कुलीरकस्तच्छ्रुत्वा प्राह—'माम ! किं तद्वैराग्य-

---

शस्त्रैः । अल्पकायः = स्वल्पतनुः । निर्बलोऽपि । शूरैः=बलवद्भिः । न परिभूयते= न पराजीयते ॥ २३१ ॥

कश्चिद्बकः—उत्तमाधममध्यमान्=बालयुववृद्धान्, मत्स्यान् भक्षयित्वापि अतृप्तः सन्-लौल्यात्=अतिलोभाच्चाञ्चल्याच्च, कर्कटकग्रहात्=कर्कटकपीडनात् । मृतः=पञ्चत्वं जगाम ॥ २३२ ॥

तत्र=सरसि । कृताश्रयः=कृतवसतिः । वृद्धभावं=वार्धक्यं । मत्स्यान्=स्वभक्ष्यभूतान्मीनान् । क्षुत्क्षामकण्ठः=बुभुक्षाक्षीणकण्ठः । मुक्ताफलप्रकरसदृशैः= मौक्तिकराशितुल्यैः । 'किमद्य त्वया नाऽऽहारवृत्तिरनुष्ठीयते' इति पा० ।

कुलीरकः=कर्कटकः, (केकड़ा) । माम !=मातुल ! (मामाजी) । आहारवृत्तिः=भोजनोपार्जनव्यापारः । सनिःश्वासेन=दीर्घमुच्छ्वासं मुञ्चमानेन । सत्यं= तथ्यम् । उपलक्षितं=तर्कितं । प्रायोपवेशनं=मरणार्थं भोजनत्यागपूर्वकमवस्थानं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कारणम् ?' स प्राह—'वत्स ! अहमस्मिन्सरसि जातो, वृद्धिं गतश्च, तन्मयैतच्छ्रुतं यद् द्वादशवार्षिक्यनावृष्टिः संपद्यते लग्ना ।' कुलीरक आह—कस्मात्तच्छ्रुतम् ?। बक आह—'दैवज्ञमुखात्' । एष शनैश्चरो हि रोहिणीशकटं भित्त्वा भौमं शुक्रं च प्रयास्यति ।

उक्तश्च वराहमिहिरेण —

यदि भिन्ते सूर्यसुतो रोहिण्याः शकटमिह लोके ।
द्वादश वर्षाणि तदा न हि वर्षति वासवो भूमौ ॥२३३॥

तथा च—

प्राजापत्ये शकटे भिन्ने कृत्वेव पातकं वसुधा ।
भस्माऽस्थिशकलकीर्णा कापालिकमिव व्रतं धत्ते ॥२३४॥

समीपगतान्=निकटतरमागतान् । वैराग्यकारणं=विरक्तिकारणम् । द्वादशवार्षिकी= द्वादशवर्षपर्यन्तभाविनी । अनावृष्टिः=('अकाल' 'सूखा') । सम्पद्यते लग्ना= निकटमागता वर्तते । दैवज्ञमुखात्=मौहूर्तिकमुखात् । (ज्योतिषी से) । 'श्रुत'-मिति शेषः ।

एषः=गगने दृश्यमानः,—रोहिणीशकटं=रोहिणीतारकचतुष्टयरूपं शकटं । शकटाकारं रोहिणीतारकमण्डलम् । भित्वा=खण्डयित्वा । प्रतियास्यति=भौम-शुक्राभ्यां सहैकराशिं यास्यति । सूर्यसुतः=शनिः । भिन्ते=भेदयति । शकटमिव-शकटं,=शकटाकारं रोहिणीमण्डलं । वासवः=इन्द्रः ॥ २३३ ॥

प्राजापत्ये शकटे=प्रजापतिदैवत्ये रोहिणीशकटे । भिन्ने=शनैश्चरेण, भौमेन, चन्द्रेण वा विदारिते सति । वसुधा=पृथ्वी । पातकं=पापं कृत्वेव, पापिनी स्वपापोपशान्तये इव-भस्मास्थिशकलैः=भस्मास्थिखण्डैः, कीर्णा=व्याप्ता सती, कापालिकव्रतं=योगिव्रतं, धत्ते इव=सेवते इव । अन्योऽपि कृतपापः-तत्पापापनुत्तये चान्द्रायणादिव्रतमाचरति । भूमिरपि कृतजनक्षयपापा जनहीनाऽस्थि-खण्डमण्डिता कापालिकव्रतमिवाचरतीति-भाविजनसंहारः सूचितः ॥ २३४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा च—

रोहिणीशकटमर्कनन्द-
श्चेद्भिनत्ति रुधिरोऽथवा शशी ।
किं वदामि तदनिष्टसागरे
सर्वलोकमुपयाति संक्षयम् ॥ २३५ ॥

रोहिणीशकटमध्यसंस्थिते
चन्द्रमस्यशरणीकृता जनाः ।
क्वाऽपि यान्ति शिशुपाचिताऽशनाः
सूर्यतप्तभिदुराऽम्बुपायिनः ॥ २३६ ॥

तदेतत्सरः स्वल्पतोयं वर्तते । शीघ्रं शोषं यास्यति । अस्मिञ्शुष्के यैः सहाऽहं वृद्धिं गतः, सदैव क्रीडितश्च, ते सर्वे तोयाऽभावान्नाशं यास्यन्ति. तत्तेषां वियोगं द्रष्टुमहमसमर्थः, तेनैतत्प्रायोपवेशनं कृतम् ।

साम्प्रतं सर्वेषां स्वल्पजलाशयानां जलचरा गुरुजलाशयेषु स्वस्वजनैर्नीयन्ते । केचिच्च मकर-गोधा-शिशुमार-जलहस्तिप्रभृतयः स्वयमेव

अर्कनन्दनः=शनिः । रुधिरः=भौमः । शशी=चन्द्रः । तदा=तस्मिन् काले, अनिष्टरूपे सागरे सर्वलोकः-संक्षयं = नाशम्, उपयाति=गच्छति-इति किं वदामि = शोकाद्वक्तुमसमर्थोऽस्मीत्यर्थः ॥ २३५ ॥

रोहिणीशकटमध्यसंस्थिते=शशिनि भिन्नरोहिणीमण्डलमध्यगते सति । अशरणीकृताः=शरणरहिताः जनाः=लोकाः, शिशुभिः=स्वापत्यैः विक्रीतैर्हतैर्वा पाचितं=निष्पादितम्-अशनं यैस्ते-शिशुपाचिताऽशनाः = स्वापत्यविक्रयादिना सम्पादितभोजनाः । सूर्यतप्तभिदुराम्बुपायिनः=सूर्यकिरणसन्तप्तकटुकजलपायिनः सन्तः, क्वापि=कुत्रापि, कान्दिशीकाः सन्तः-यान्ति=स्वस्वदेशं विहाय पलायन्ते । 'भिदुरं, कुलिशेऽपि स्याद्भर्त्तर्यपि भिदेलिमे' इति केशवः ॥ २३६ ॥

ते = मत्स्याः, तोयाभावात्=जलाभावात् । तेषां = भवतां मत्स्यानां, प्रायोपवेशनं=भोजनादित्यागः । साम्प्रतम्=इदानीम् । जलचराः=मत्स्यादयः । गुरुजलाशयेषु=महत्सु जलाशयेषु सरोवरह्रदादिषु । स्वस्वजनैः=तत्तदात्मीय-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गच्छन्ति। अत्र पुनः सरसि ये जलचरास्ते निश्चिन्ताः सन्ति, तेनाऽहं विशेषाद्रोदिमि–यद्बीजशेषमात्रमप्यत्र नोद्धरिष्यति।' ततः स तदाकर्ण्याऽन्येषामपि जलचराणां तत्तस्य वचनं निवेदयामास।

अथ ते सर्वे भयत्रस्तमनसो मत्स्य-कच्छपप्रभृतयस्तमभ्युपेत्य पप्रच्छुः–'माम! अस्ति कश्चिदुपायो येनाऽस्माकं रक्षा भवति?'।

बक आह–'अस्त्यस्य जलाशयस्य नाऽतिदूरे प्रभूतजलसनाथं सरः पद्मिनीषण्डमण्डितं,–यच्चतुर्विंशत्यापि वर्षाणामनावृष्ट्या न शोषमेष्यति। तद्यदि मम पृष्ठं कश्चिदारोहति, तदहं तं तत्र नयामि।'

अथ ते तत्र विश्वासमापन्नाः–तात! मातुल! भ्रातः! इति ब्रुवाणाः–'अहं पूर्वमहं पूर्वम्'–इति समन्तात्परितस्थुः।

सोऽपि दुष्टाशयः क्रमेण तान्पृष्ठे आरोप्य जलाशयस्य नातिदूरे शिलां समासाद्य, तस्यामाक्षिप्य, स्वेच्छया भक्षयित्वा, भूयोऽपि जलाशयं समासाद्य, जलचराणां मिथ्यावार्तासन्देशकैर्मनांसि रञ्जयन्नित्यमेवाऽऽहारवृत्तिमकरोत्। अन्यस्मिन्दिने च कुलीरकेणोक्तः–'माम! मया सह ते प्रथमः स्नेहसंभाषः सञ्जातः, तत्किं मां परित्यज्याऽन्यान्नयसि?। तस्मादद्य मे प्राणत्राणं कुरु।'

तदाकर्ण्य सोऽपि दुष्टाशयश्चिन्तितवान्–निर्विण्णोऽहं मत्स्यमांसादनेन, तदद्यैनं कुलीरकं व्यञ्जनस्थाने करोमि।'

वर्गैर्नीयन्ते = प्राप्यन्ते। केचित्=मकरादयो जलचराः। जलहस्तीति। (मकर= 'मगर'। गोधा='गोह' शिशुमारः = 'सुइस', जलहस्ती = 'दर्याई घोड़ा' या 'बड़ी मछली')। निश्चिन्ताः = निरुद्यमाः। बीजशेषमात्रमपि = नाममात्रावशिष्टोऽपि कश्चित्। नोद्धरिष्यति = न स्थास्यति। सर्वेऽपि विलयं यास्यन्तीत्यर्थः।

सः = कर्कटः। आकर्ण्य=श्रुत्वा। तस्य=बकस्य। प्रभूतजलसनाथं=विपुलतोयराशिविराजितम्। पद्मिनीषण्डमण्डितं = पद्मिनीलताकदम्बराजितम्। 'खण्ड' पा०। अनावृष्ट्या=अवर्षणेन। विश्वासमापन्नाः=जातविश्वासाः। इति=इत्येवं वदन्तः। समन्तात् = बकस्योपरि सर्वतः। परितस्थुः=आरुरुहुः। मिथ्या=मुधैव। वार्तासन्देशकैः = कुशलवृत्तान्तादिभिः। 'नित्यामिव' इति पाठान्तरम्। आहार-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

—इति विचिन्त्य तं पृष्ठे समारोप्य तां वध्यशिलामुद्दिश्य प्रस्थितः।

कुलीरकोऽपि दूरादेवाऽस्थिपर्वतं शिलाश्रयमवलोक्य, मत्स्यास्थीनि परिज्ञाय, तमपृच्छत्–माम ! कियद्दूरे स जलाशयः ?, मदीयभारेणाऽतिश्रान्तस्त्वम्, तत्कथय ?'।

सोऽपि मन्दधीर्जलचरोऽयं स्थले न प्रभवतीति मत्वा सस्मितमिदमाह–'कुलीरक ! कुतोऽन्यो जलाशयः ?, मम प्राणयात्रेयम्। तस्मात्समर्यतामात्मनोऽभीष्टदेवता, त्वामप्यस्यां शिलायां निक्षिप्य भक्षयिष्यामि।'

–इत्युक्तवति तस्मिन् तेन स्ववदनदंशद्वयेन मृणालनालधवलायां मृदुग्रीवायां (स) गृहीतो, मृतश्च।

अथ स तां बकग्रीवां समादाय शनैः शनैस्तज्जलाशयमाससाद। ततः सर्वैरेव जलचरैः पृष्टः–'भोः कुलीरक! किं निवृत्तस्त्वम् ?। स मातुलोऽपि नाऽऽयातः। तत्किं चिरयति ?, वयं सर्वे सोत्सुकाः कृतक्षणास्तिष्ठामः'।

एवं तैरभिहिते कुलीरकोऽपि विहस्योवाच–मूर्खाः सर्वे जलचरास्तेन मिथ्यावादिना वञ्चयित्वा नाऽतिदूरे शिलातले प्रक्षिप्य भक्षिताः। [1]तन्मयाऽऽयुःशेषतया तस्य विश्वासघातकस्याऽभिप्रायं ज्ञात्वा, ग्रीवेयमानीता। तदलं संभ्रमेण, अधुना सर्वजलचराणां क्षेमं भविष्यति।' अतोऽहं ब्रवीमि–'भक्षयित्वा बहून्मत्स्यान्–' इति ॥४॥

वृत्ति=भोजनोपायं, भोजनं वा। प्रथमः=पूर्वः। आदावेव कृतः। स्नेहसंभाषः=प्रेमालापः। निर्विण्णः=व्याकुलः व्यञ्जनस्थानीयं=उपदंशरूपं। ('चटपटी' 'निमकीन')।

अस्थिपर्वतं=महान्तमस्थिराशिं। शिलाश्रयं = शिलोपस्थितम्। सः=बकः। मन्दधीः = मूढः। स्थले=भूमौ। न प्रभवति = नापकर्त्तुं समर्थः। सस्मितं=समन्दहासम्। प्राणयात्रा = जीवनोपायः। अभीष्टदेवता = उपास्यदेवता। 'परलोकसद्गतये' इति शेषः। तस्मिन् = बके। स्ववदनदंशद्वयेन=स्वमुखसन्दंशयुगलेन।

मृणालनालधवलायां = बिसतन्तुस्वच्छायां। मृदुग्रीवायां=कोमलकण्ठनाले। गृहीतः=दष्टः। किं-निवृत्तः=परावृत्तः। स मातुलः=बकः। चिरयति=विलम्बते। कृतक्षणाः=निवृत्तसर्वकार्याः, यानोन्मुखाः, सावधानाश्च। सम्भ्रमेण=औत्सुक्येन,

---

१ 'ममाऽऽयुः' पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वायस आह–'भद्र ! तत्कथय कथं स दुष्टसर्पो वधमुपैष्यति ?' ।

शृगाल आह–'गच्छतु भवान्किञ्चिन्नगरं राजाधिष्ठानम् । तत्र कस्याऽपि धनिनो राजाऽमात्यादेः प्रमादिनः कनकसूत्रं, हारं वा गृहीत्वा, तत्कोटरे प्रक्षिप, येन सर्पस्तद्ग्रहणेन वध्यते ।'

अथ तत्क्षणात्काकः, काकी च तदाकर्ण्यात्मेच्छयोत्पतितौ । ततश्च काकी किञ्चित्सरः प्राप्य यावत्पश्यति, तावत्तन्मध्ये कस्यचिद्राज्ञोऽन्तःपुरं [1]जलासन्नशिलान्यस्तकनकसूत्रं मुक्त-मुक्ताहारवस्त्राभरणं जलक्रीडां कुरुते ।

अथ सा वायसी कनकसूत्रमेकमादाय स्वगृहाभिमुखं प्रतस्थे । ततश्च कञ्चुकिनो, वर्षवराश्च तन्नीयमानमुपलक्ष्य गृहीतलगुडाः सत्वरमनुययुः ।

काक्यपि सर्पकोटरे तत्कनकसूत्रं प्रक्षिप्य सुदूरमवस्थिता ।

अथ–यावद्राजपुरुषास्तं वृक्षमारुह्य तत्कोटरमवलोकयन्ति, तावत् कृष्णसर्पः प्रसारितभोगस्तिष्ठति । ततस्तं लगुडप्रहारेण हत्वा, कनकसूत्र-मादाय, यथाभिलषितं स्थानं गताः । वायसदम्पती अपि ततः परं सुखेन वसतः । अतोऽहं ब्रवीमि—'उपायेन हि यत्कुर्यात्'—इति ॥❀॥

तन्न किञ्चिदिह बुद्धिमतामसाध्यमस्ति । उक्तञ्च—

यस्य बुद्धिर्बलं तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।
[2]वने सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः ॥ २३७ ॥

व्यग्रतया वा । अलं=न प्रयोजनम् । राजाधिष्ठानं=राजाधिष्ठितं । धनिनः= श्रेष्ठिनः । प्रमादिनः=प्रमत्तस्य, असावधानस्य । कनकसूत्रं=स्वर्णदोरकम् । ['सोने का हार', कण्ठी, 'डोरा'] । हारं=मौक्तिकमालां । तत्कोटरे=सर्पबिले । तद्ग्रहणेन=आभरणहरणेन । आत्मेच्छया = स्वेच्छया । काञ्चिद्दिशम् । तन्मध्ये= सरोवरमध्ये । अन्तःपुरं=शुद्धान्तस्त्रीजनः । जलासन्ने देशे न्यस्तं कनकसूत्रं येन तत्–। जलनिकटस्थशिलादिस्थापितकनकदोरकाभरणम् । मुक्तानि=स्थापितानि । मुक्ताहारवस्त्राभरणानि येन तत् । जलक्रीडां = सरोवरावगाहनकेलिकम् । वायसी= काकी । कञ्चुकिनो वर्षवराश्च—राजान्तःपुररक्षकाः । तत्=कनकदोरकं ।

---

१ 'जलासन्नं, न्यस्तकनकसूत्रं' पा० । २ 'पश्य चाऽतिबलः सिंहः शशकेन निपातितः' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करटक आह—'कथमेतत् ?'। स आह—

८. भासुरकसिंह-शशककथा।

कस्मिंश्चिद्वने भासुरको नाम सिंहः प्रतिवसति स्म। अथाऽसौ वीर्यातिरेकान्नित्यमेवाऽनेकान् मृगशशकादीन् व्यापादयन् नोपरराम।

अथाऽन्येद्युस्तद्वनजाः सर्वे सारङ्ग-वराह-महिष-शशकादयो मिलित्वा तमभ्युपेत्य प्रोचुः—'स्वामिन्! किमनेन सकलमृगवधेन नित्यमेव। यतस्तवैकेनापि मृगेण तृप्तिर्भवति, तत्क्रियतामस्माभिः सह समयधर्मः। अद्यप्रभृति तवाऽत्रोपविष्टस्य जातिक्रमेण प्रतिदिनमेको मृगो भक्षणार्थं समेष्यति। एवं कृते तव तावत् प्राणयात्रा क्लेशं विनापि भविष्यति, अस्माकं च पुनः [1]सर्वोच्छेदो न स्यात्। तदेष राजधर्मोऽनुष्ठीयताम्।

उक्तञ्च—

शनैः शनैश्च यो राज्यमुपभुङ्क्ते यथाबलम्।
रसायनमिव क्ष्माप[2] स पुष्टिं परमां व्रजेत्॥ २३८॥

सर्पकोटरे = सर्पनिवासकुहरे (सांप के बिलमें)। प्रसारितभोगः=सफटाटोपं सज्जितशरीरः। मन्दोन्मत्तः=बलदर्पितः। शशकेन=सामान्येन मृगभेदेन। ['सुसिया' 'खरहा']। निपातितः=मारितः॥ २३७॥

वीर्यातिरेकात्=अतिदर्पात्। व्यापादयन्=मारयन्नपि। अन्येद्युः=अन्यस्मिन्दिने ['किसी दिन']। सारङ्गाः=मृगाः। वराहाः=सूकराः, महिषाः=लुलायाः। (भैंसा)। तं=सिंहम्। समयधर्मः=प्रतिज्ञाबन्धः। ['वचन देना' 'शर्त']।

उपविष्टस्य=इहैव स्थितस्यापि। जातिक्रमेण=मृगवराहमहिषादिजातिपरिपाट्या। मृगः=पशुः। प्राणयात्रा=जीवननिर्वाहः—भोजनम्। सर्वोच्छेदः=सर्वनाशः। एषः=वक्ष्यमाणः।

यथाबलं=शक्त्यनुसारेण। रसायनं=जरामृत्युविध्वंसकौषधमिव। क्ष्मापः=राजा। पुष्टिं=दार्ढ्यम्, बलवत्ताञ्च। परमाम्=उत्कृष्टतमाम्॥ २३८॥

---

१ 'सर्वोच्छेदनं' पा०। २ 'क्ष्माभृत्' इति, 'प्राज्ञ' इति च पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विधिना मन्त्रयुक्तेन रूक्षाऽपि, मथितापि च ।
प्रयच्छति फलं भूमिररणीव हुताशनम् ॥ २३९ ॥
प्रजानां पालनं शस्यं, स्वर्गकोशस्य वर्द्धनम् ।
पीडनं धर्मनाशाय पापायाऽयशसे स्थितम् ॥ २४० ॥
गोपालेन प्रजाधेनोर्वित्तदुग्धं शनैः शनैः ।
पालनात्पोषणाद् ग्राह्यं, न्याय्यां वृत्तिं समाचरेत् ॥ २४१ ॥
अजामिव प्रजां मोहाद्यो हन्यात्पृथिवीपतिः ।
तस्यैका जायते तृप्तिर्न द्वितीया कथञ्चन ॥ २४२ ॥
फलार्थी नृपतिर्लोकान् पालयेद्यत्नमास्थितः ।
दानमानादि-तोयेन मालाकारोऽङ्कुरानिव ॥ २४३ ॥
नृप-दीपो धन-स्नेहं प्रजाभ्यः सहरन्नपि ।
आन्तरस्थैर्गुणैः शुभ्रैर्लक्ष्यते नैव केनचित् ॥ २४४ ॥

मन्त्रयुक्तेन विधिना=समन्त्रेण शास्त्रदृष्टेन विधिना । सुमन्त्रशालिना सामाद्युपायेन च । मथितापि = भ्रमिता, शनैः = शनैराक्रान्ता च । रूक्षापि = शुष्का, निःस्नेहा, कठोराऽपि । भूमिः=वसुधा । फलं=धनादिकं ।प्रयच्छति=ददाति । अरणी= मन्थनकाष्ठं–हुताशनमिव । अरणिर्यथाविधि मथ्यमाना शुष्काऽपि फलं=वह्निं ददात्येव ॥ २३९ ॥

शस्यं = स्तुत्यं । इह = अस्मिन् लोके । परलोके–स्वर्गस्य । कोशस्य=धनस्य च, वर्धनं । 'स्वर्णे'ति पा० । प्रजानां पीडनं तु राज्ञो–धर्महानिं = पापम्, अकीर्त्तिं च कुरुते इति भावः ॥ २४० ॥

गोपालेन = राज्ञा, धेनुरक्षकेण च । प्रजारूपाया—धेनोः, वित्तमेव–दुग्धं । न्याय्याम् = उचितां, धर्म्याञ्च ॥ २४१ ॥ अजा = छागी । एका=एकवारमेव । द्वितीया = पुनरपि । 'अजा इव प्रजा' इत्यपि पाठः ॥२४२॥

फलार्थी नृपतिर्यत्नमास्थितः सन्–मालाकारोऽङ्कुरानिव–दानमानादिलेनन–लोकान्=प्रजाः, पालयेत् ॥ २४३ ॥

नृपरूपो दीपः-आन्तरस्थैः–स्वात्मस्थैः । 'अन्तरस्थै'रित्यपि पाठः । शुभ्रैः गुणैः–

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यथा गौर्दुह्यते काले [1]पाल्यते च तथा प्रजा ।
सिच्यते चीयते चैव लता पुष्पफलप्रदा ॥ २४५ ॥
यथा बीजाङ्कुरः सूक्ष्मः प्रयत्नेनाऽभिरक्षितः ।
फलप्रदो भवेत्काले, तद्वल्लोकः सुरक्षितः ॥ २४६ ॥
हिरण्यधान्यरत्नानि यानानि विविधानि च ।
तथाऽन्यदपि यत्किञ्चित्प्रजाभ्यः स्यान्महीपतेः ॥ २४७ ॥
लोकाऽनुग्रहकर्त्तारः प्रवर्द्धन्ते नरेश्वराः ।
लोकानां सङ्क्षयाच्चैव क्षयं यान्ति न संशयः ॥ २४८ ॥

अथ तेषां तद्वचनमाकर्ण्य भासुरक आह-'अहो ! सत्यमभिहितं भवद्भिः। परं यदि ममोपविष्टस्याऽत्र नित्यमेव नैकैको मृगः[2] समागमिष्यति, तन्नूनं सर्वानपि भक्षयिष्यामि ।'

अथ ते [3]'तथे'ति प्रतिज्ञाय निर्वृतिभाजस्तत्रैव वने निर्भयाः पर्यटन्ति । एकश्च जातिक्रमेण[4] वृद्धो वा,-वैराग्ययुक्तो वा, शोकग्रस्तो वा, पुत्रकलत्रनाशभीतो वा, तेषां मध्यात्तस्य भोजनार्थं मध्याह्नसमये प्रतिदिनमुपतिष्ठते ।

अथ कदाचिज्जातिक्रमाच्च[5] शशकस्याऽवसरः समायातः। स समस्त-

दानमानादिभिः, वर्त्तितन्तुभिश्च ['बत्ती'] । धनरूपं स्नेहं = तैलं, धनं-स्नेहमिव वा । संहरन्नपि=गृह्णन्नपि । केनचिदपि न लक्ष्यते=न ज्ञायते ॥२४४॥

चीयते=चयकाले पुष्पाणि फलानि च तस्या गृह्यन्ते । (समय पर फूल चुने जाते हैं) ॥ २४५ ॥

सूक्ष्मः = स्वल्पः । काले = फलावसरे । लोकः-प्रजा ॥ २४६ ॥ अन्यदपि= वस्त्राद्युपभोगसाधनम् । अतः-प्रजा राज्ञा सादरं परिरक्षणीयेत्याशयः ॥ २४७ ॥

संक्षयात् = पीडनात् ॥ २४८ ॥ 'श्वापद' इति पाठे-श्वापदः = हिंस्रजन्तुः । तत् = तर्हि । नूनम् = अवश्यम् । निर्वृतिभाजः = सुखिनः । तेषां = मृगाणाम् ।

---

१ 'पाल्यन्ते च तथा प्रजाः' पा० । २ 'नैकैकः 'श्वापदः' । ३ 'तथैव'-इति पा० । ४ 'एकश्च प्रतिदिनं क्रमेण याति वृद्धो वा' पा० । ५ चकारः क्वाचित्कः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मृगैः प्रेरितोऽनिच्छन्नपि मन्दं-मन्दं गत्वा, तस्य वधोपायं चिन्तयन्-वेलातिक्रमं कृत्वा, व्याकुलितहृदयो यावद्गच्छति, तावन्मार्गे गच्छता कूपः संदृष्टः। यावत्कूपोपरि याति तावत्कूपमध्ये आत्मनः प्रतिबिम्बं ददर्श। दृष्ट्वा च तेन हृदये चिन्तितं, यद्–'भव्य उपायोऽस्ति, अहं भासुरकं प्रकोप्य स्वबुद्ध्याऽस्मिन्कूपे पातयिष्यामि'।

अथाऽसौ दिनशेषे भासुरकसमीपं प्राप्तः। सिंहोऽपि वेलातिक्रमेण क्षुत्क्षामकण्ठः,कोपाविष्टः, सृक्कणी [1]परिलिहन्नचिन्तयत्–'अहो! प्रातराहाराय निःसत्त्वं वनं मया कर्तव्यम्। एवं चिन्तयतस्तस्य शशको मन्दं मन्दं गत्वा प्रणम्याऽग्रे स्थितः।

अथ तं प्रज्वलितात्मा भासुरको भर्त्सयन्नाह–'रे शशकाधम! एकतस्तावत्त्वं लघुः प्राप्तः! अपरतो वेलातिक्रमेण!!। [2]तदस्मादपराधात्त्वां निपात्य, प्रातः सकलान्यपि मृगकुलान्युच्छेदयिष्यामि'।

अथ शशकः सविनयं प्रोवाच-'स्वामिन्! नापराधो मम, न चाऽन्यमृगाणाम्[3],तच्छ्रूयतां कारणम्।' सिंह आह–'सत्वरं निवेदय-यावन्मम दंष्ट्राऽन्तर्गतो न [4]भवान्भविष्यति'—इति।

शशक आह–'स्वामिन्! समस्तमृगैरद्य जातिक्रमेण मम लघुतरस्य प्रस्तावं विज्ञाय, ततोऽहं पञ्चशशकैः समं प्रेषितः। ततश्चाऽहमागच्छन्नन्तराले महता[5] केनचिदपरेण सिंहेन (क्षिति)विवरान्निर्गत्याऽ-

---

वेलातिक्रमं = कालयापनम्। तेन = शशकेन। भव्यः = अपायरहितः, सुन्दरः, श्रेष्ठश्च। असौ = शशकः। सृक्कणी = ओष्ठप्रान्तभागौ। निस्सत्त्वं=सर्वश्वापदशून्यम्। प्रज्वलितात्मा=क्रोधाविष्टः। भर्त्सयन्=तर्जयन्। (डाँटता हुआ)।

एकतः=एकत्र। ('एक तो')। लघुः = अल्पशरीरः,अपरम् ('दूसरे')। वेलाऽतिक्रमेण=भोजनावसरमतिवाह्य। 'प्राप्त' इति शेषः। दंष्ट्रान्तर्गतः=मुखगह्वरं प्रविष्टः। (दंष्ट्रा='जाड़')। अन्तराले=मार्गस्य मध्ये। विवरात्=गह्वरात्।

---

१ परिलेलिहन्नचिन्तयत्' 'परिलेलिहत्'–पा०। २ 'तस्मादेतस्मात्' पा०।
३ 'न च सत्त्वानाम्'। ४ 'न भवसि'। ५ 'महतः क्षितिविवरान्निर्गत्य'।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भिहितः-'रे ! क्व प्रस्थिता यूयम् ? । अभीष्टदेवतां स्मरत ।'

ततो मयाऽभिहितं— वयं स्वामिनो भासुरकसिंहस्य सकाशे आहारार्थं समयधर्मेण गच्छामः ।'

ततस्तेनाभिहितं-'यद्येवं, तर्हि मदीयमेतद्वनं, मया सह समयधर्मेण समस्तैरपि [२]श्वापदैर्वर्त्तितव्यम् । चौररूपी स भासुरकः । अथ यदि सोऽत्र राजा, ततो विश्वासस्थाने चतुरः शशकानत्र धृत्वा, तमाहूय द्रुततरमागच्छ । येन यः कश्चिदावयोर्मध्यात्पराक्रमेण राजा भविष्यति, स सवानेतान्भक्षयिष्यति'—इति ।

ततोऽहं तेनाऽऽदिष्टः स्वामिसकाशमभ्यागतः । एतद्वेलाव्यतिक्रमकारणम् । तदत्र स्वामी प्रमाणम् ।' ([३]इति) ।

तच्छ्रुत्वा भासुरक आह-'भद्र ! यद्येवं, तत्सत्वरं दर्शय मे तं चौरसिंहं, येनाऽहं मृगकोपं तस्योपरि क्षिप्त्वा, स्वस्थो भवामि ।

उक्तञ्च—

भूमिर्मित्रं हिरण्यं च विग्रहस्य फलत्रयम् ।
नास्त्येकमपि यद्येषां, न तं कुर्यात्कथञ्चन ॥ २४९ ॥
यत्र न स्यात्फलं भूरि, यत्र च स्यात्पराभवः ।
न तत्र मतिमान् युद्धं समुत्पाद्य समाचरेत्' ॥ २५० ॥

समयधर्मेण=प्रतिज्ञानुसारेण । विश्वासस्थाने=स्वोक्तिप्रत्यायनार्थं प्रातिभाव्येन । धृत्वा=स्थापयित्वा । चौरसिंहं=दुष्टं सिंहाधमं । मृगकोपं=मृगोपरि वर्धमानं कोपम् तस्य=दुष्टसिंहस्य ।

भूमिः=ग्रामराज्यादिकम् । मित्रं=मित्रानुरञ्जनं वा । हिरण्यं=धनम् । विग्रहस्य=युद्धस्य । एषाम्=एषां मध्ये । तं=युद्धम् ॥ २४९ ॥

यत्र भूरि फलं युद्धे न स्यात्, यत्र च युद्धे पराभवः=पराजयो निश्चितः स्यात्, तत्र=तस्मिन्नवसरे, मतिमान्-समुत्पाद्य=स्वयमात्मनाऽग्रसरो भूत्वा, युद्धं न समाचरेत् । किञ्च-स्वल्पस्य कृते बलिना सह युद्धं नाचरेदिति भावः ।

---

१ 'सकाशम्' पा० । २ 'मृगैः' । ३ क्वचिदपि न दृश्यते ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शशक आह—स्वामिन् ! सत्यमिदं, स्वभूमिहेतोः परिभवाच्च युध्यन्ते क्षत्रियाः। परं स दुर्गाश्रयः, दुर्गान्निष्क्रम्य वयं तेन विष्कम्भिताः। ततो दुर्गस्थो दुःसाध्यो भवति रिपुः।

उक्तञ्च—

न गजानां सहस्रेण, न च लक्षेण वाजिनाम्।
तत्कृत्यं[1] साध्यते राज्ञां, दुर्गेणैकेन यद्भवेत् ॥ २५१ ॥
शतमेकोऽपि सन्धत्ते प्राकारस्थो धनुर्धरः।
तस्माद्दुर्गं प्रशंसन्ति नीतिशास्त्रविचक्षणाः ॥ २५२ ॥
पुरा गुरोः समादेशाद्धिरण्यकशिपोर्भयात्।
शक्रेण विहितं दुर्गं प्रभावाद्विश्वकर्मणः ॥ २५३ ॥
तेनापि च वरो दत्तो 'यस्य दुर्गं स भूपतिः।
विजयी स्या' त्ततो भूमौ दुर्गाणि स्युः सहस्रशः[2] ॥ २५४ ॥
दंष्ट्राविरहितो नागो, मदहीनो यथा गजः।
[2]सर्वेषां जायते वश्यो दुर्गहीनस्तथा नृपः ॥ २५५ ॥

तच्छ्रुत्वा भासुरक आह–भद्र ! दुर्गस्थमपि दर्शय तं चौरसिंहं, येन व्यापादयामि।

परिभवात्=अपमानाच्च। क्षत्रियाः=मानिनः क्षत्रियाः। सः=प्रतिपक्षी सिंहः। दुर्गनिवासी। विष्कम्भिताः=अवरुद्धाः (रोके गए थे)। सन्धत्ते=लक्ष्यतां नयति। प्राकारस्थः=दुर्गभित्तिप्रान्तस्थः ॥ २५२ ॥

शक्रेण=इन्द्रेण। विश्वकर्मणः=देवशिल्पिनः। प्रभावात्=साहाय्यात् ॥२५३॥

तेन=इन्द्रेण। वरमेवाह–यस्येति। ततः=इन्द्रवरप्रभावात्। स्युः=अभूवन् ॥ २५४ ॥

दंष्ट्राविरहितः=उत्पाटितविषदन्तः। नागः=सर्पः ॥ २५५ ॥

---

१ 'यत्कृत्यं साध्यते राज्ञां दुर्गेणैकेन सिध्यति' पा०।
२ 'दुर्गाणि सुबहून्यपि।'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उक्तञ्च—

जातमात्रं न यः शत्रुं रोगं च प्रशमं नयेत् ।
महाबलोऽपि तेनैव वृद्धिं प्राप्य स हन्यते ॥ २५६ ॥

तथा च—

उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता ।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यन्तावामयः, स च ॥ २५७ ॥

अपि च—

उपेक्षितः क्षीणबलोऽपि शत्रुः
प्रमाददोषात्पुरुषैर्मदान्धैः ।
साध्योऽपि भूत्वा प्रथमं ततोऽसा-
वसाध्यतां व्याधिरिव प्रयाति ॥ २५८ ॥

तथा च—

आत्मनः शक्तिमुद्वीक्ष्य, मानोत्साहञ्च यो व्रजेत् ।
बहून्हन्ति[1] स एकोऽपि क्षत्रियान्भार्गवो यथा ॥२५९॥

वृद्धिं प्राप्य=प्रवृद्धेन । तेनैव = शत्रुणा, रोगेण च । महाबलोपि । सः= रोगशत्रूपेक्षकः ॥ २५६ ॥

उत्तिष्ठमानः=वर्द्धमानः । परः=शत्रुः । पथ्यं = हितम् । शिष्टैः = विचक्षणैः । आमयः = रोगः । सः=शत्रुश्च । वर्त्स्यन्तौ=वर्धमानौ । समौ=तुल्यौ । आम्नातौ = कथितौ ॥ २५७ ॥

मन्दाधैः = बलदर्पितैः । पुरुषैः—प्रमाददोषात् = अनवधानमूलान्मौर्ख्यात । उपेक्षितः = अकृतप्रतीकारः । क्षीणबलोऽपि = निर्बलोऽपि । शत्रुः = रिपुः । प्रथमम् = आदौ । साध्यो भूत्वापि = उपायसाध्यतां भजमानोऽपि । उपाय-साध्योऽपि । असौ = उपेक्षितो रिपुः व्याधिरिव क्रमशः-असाध्यतां प्रयाति = भजते । साध्योऽपि हि व्याधिरुपेक्षितोऽसाध्यो भवत्येव ॥ २५८ ॥

---

१ 'शत्रूनेकोऽपि हन्यात्स क्षत्रियान्' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शशक आह—'अस्त्येतत्, तथापि बलवान् स मया दृष्टः, तन्न युज्यते स्वामिनस्तस्य सामर्थ्यमविदित्वैव गन्तुम्।

उक्तञ्च—

अविदित्वाऽऽत्मनः शक्तिं, परस्य च समुत्सुकः।
गच्छन्नभिमुखो नाशं [1]याति वह्नौ पतङ्गवत् ॥२६०॥
यो बलात्प्रोन्नतं[2] याति निहन्तुं सबलोऽप्यरिम्।
विमदः स निवर्त्तेत, शीर्णदन्तो गजो यथा ॥२६१॥

भासुरक आह—'भोः! किं तवाऽनेन व्यापारेण?'। दर्शय मे तं दुर्गस्थमपि।'

अथ शशक आह—यद्येवं तर्ह्यागच्छतु स्वामी।'

एवमुक्त्वाऽग्रे व्यवस्थितः। ततश्च तेनाऽऽगच्छता यः कूपो दृष्टोऽभूत्तमेव कूपमासाद्य भासुरकमाह 'स्वामिन्! कस्ते प्रतापं सोढुं समर्थः। त्वां दृष्ट्वा दूरतोऽपि चौरसिंहः प्रविष्टः[3] स्वं दुर्गं, तदागच्छ येन दर्शयामि'-इति।

भासुरक आह—'दर्शय मे दुर्गम्।' तदनु दर्शितस्तेन कूपः।

मनोत्साहम् = अभिमानं, युद्धोत्साहञ्च। व्रजेत् = आक्रमणं कर्त्तुं गच्छेत्। सः = उत्साहबलोर्जितः। भार्गवो यथा = परशुराम इव ॥२५९॥

सः = चौरसिंहः॥ आत्मनः परस्य च शक्तिमविदित्वा-समुत्सुकः=युद्धोत्सुकः, अभिमुखं = शत्रुसंमुखं, गच्छन् वह्नौ पतङ्ग इव नाशं प्रयाति ॥२६०॥

यः बलात् प्रोन्नतं = प्रकृष्टबलशालिनम्, अरिं = शत्रुं, निहन्तुं प्रयाति स सबलोऽपि विमदः=पराजितः सन् (शीर्णदन्त=भग्नदन्तः, गज इव—) निवर्त्तते। अतो बलवदभियानं नोचितमित्याशयः ॥ २६१ ॥

व्यवस्थितः = अग्रसरो बभूव। प्रचलितः।

---

१ 'गच्छन्नभिमुखो वह्नौ नाशं याति पतङ्गवत्'।

२ 'योऽबलः प्रोन्नतं याति निहन्तुं सबलं रिपु'मिति पाठान्तरम्।

३ 'येन त्वां दूरतोऽपि दृष्ट्वा चौरोऽयं तद्दुर्गं प्रविष्टः'।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ततः सोऽपि मूर्खः सिंहः कूपमध्ये आत्मप्रतिबिम्बं जलमध्यगतं दृष्ट्वा सिंहनादं मुमोच। ततः प्रतिशब्देन कूपमध्याद् द्विगुणतरो नादः समुत्थितः। अथ तेन तं शत्रुं मत्वाऽऽत्मानं[1] तस्योपरि प्रक्षिप्य प्राणाः परित्यक्ताः।

शशकोऽपि हृष्टमनाः सर्वमृगानानन्द्य,तैः प्रशस्यमानो यथासुखं तत्र वने निवसति स्म। अतोऽहं ब्रवीमि– यस्य बुद्धिर्बलं तस्य–'इति।❀

तद्यदि भवान्कथयति, तत्तत्रैव गत्वा तयोः स्वबुद्धिप्रभावेण मैत्री-भेदं करोमि।'

करटक आह–'भद्र! यद्येवं तर्हि गच्छ, शिवास्ते पन्थानः सन्तु, यथाऽभिप्रेतमनुष्ठीयताम्।'

अथ दमनकः सञ्जीवकवियुक्तं पिङ्गलकमवलोक्य तत्राऽन्तरे प्रणम्याऽग्रे समुपविष्टः। पिङ्गलकोऽपि तमाह 'भद्र! किं चिराद् दृष्टः?।

दमनक आह–'न किञ्चिद्देवपादानामस्माभिः प्रयोजनम्, तेनाहं नाऽऽगच्छामि, तथापि राजप्रयोजनविनाशमवलोक्य संदह्यमानहृदयो व्याकुलतया स्वयमेवाऽभ्यागतो वक्तुम्'।

उक्तञ्च—

प्रियं वा यदि वा द्वेष्यं, शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
अपृष्टोऽपि हितं ब्रूयाद्यस्य नेच्छेत्पराभवम्॥२६२॥

अनेन=उपदेशादिना, किं=न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः। तेन=शशकेन। आसाद्य=प्राप्य। 'दूरतोऽपि दृष्ट्वे'ति सम्बन्धः। स्वं दुर्गं=कूपम्। तेन=शशकेन। तेन=सिंहनादेन। तं शत्रुम्=अन्तः स्थितं, मत्वा=ज्ञात्वा। तेन=सिंहेन।

तस्योपरि=स्वप्रतिबिम्बस्योपरि। कूपमध्ये। प्रशस्यमानः=स्तूयमानः। 'तैः सह वने वसति स्मे'ति सम्बन्धः।

भवान्=करटकः, तयोः=सञ्जीवकपिङ्गलकयोः। यथाभिप्रेतम्=तयोर्मैत्रीभेदादिकम्। सञ्जीवकवियुक्तं=कदाचित्-सञ्जीवकवृषभरहितम्। तत्रान्तरे=

---

१ 'शक्ततरोऽयमिति मत्वा' पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ तस्य साऽभिप्रायं वचनमाकर्ण्य पिङ्गलक आह–'किं वक्तुमना भवान् ?। तत्कथ्यतां यत्कथनीयमस्ति।'

स प्राह-'देव ! सञ्जीवको युष्मत्पादानामुपरि द्रोहबुद्धि'रिति।

विश्वासगतस्य मम विजन इदमाह-'भो दमनक ! दृष्टा मयाऽस्य पिङ्गलकस्य साराऽसारता, तदहमेनं हत्वा सकलमृगाधिपत्यं त्वत्साचिव्यपदवीसमन्वितं करिष्यामि' (–इति)।

पिङ्गलकोऽपि तद्वज्रसारप्रहारसदृशं दारुणं वचः समाकर्ण्य मोहमुपगतो न किञ्चिदप्युक्तवान्। दमनकोऽपि तस्य[1] तमाकारमालोक्य चिन्तितवान्– अयं तावत्सञ्जीवकनिबद्धरागः, तन्नूनमनेन मन्त्रिणा राजा विनाशमवाप्स्यति' –इति। उक्तञ्च––

एकं भूमिपतिः करोति सचिवं राज्ये प्रमाणं यदा,
तं मोहाच्छ्रयते मदः, स च मदाद्दास्येन निर्विद्यते।
निर्विण्णस्य पदं करोति हृदये तस्य स्वतन्त्रपृस्हा,
स्वातन्त्र्यस्पृहया ततः स नृपतेः प्राणेष्वभिद्रुह्यते ॥२६३॥

तस्मिन्नवसरे। राजप्रयोजनविनाशं = राजकार्यहानिम्। साभिप्रायं = गूढाशयशालि। विश्वासगतस्य = विश्वासपात्रस्य। विजने = एकान्ते। साराऽसारता=कोशबलादितत्त्वम्। बलम्। एनं=सिंहं। तव साचिव्यपदव्या समन्वित–त्वत्साचिव्यपदवीसमन्वितम्। तुभ्यं मन्त्रिपदवीं दत्त्वेति यावत्। वज्रवत्सारं यस्यासौ तेन-वज्रसारेण यः प्रहारस्तेन सदृशं=वज्रकठोरप्रहारोपमं। दारुणं=क्रूरं। समाकर्ण्य=श्रुत्वा। मोहं=मूर्च्छाम्। उपगतः=प्राप्तः। तस्य=सिंहस्य। तमाकारं=मौनमूर्च्छादिलक्षितां चित्तवृत्तिं, मुखाकृतिञ्च। अयं=सिंहः। सञ्जीवकनिबद्धरागः=सञ्जीवकस्नेहासक्तः। अनेन=सञ्जीवकेन। मन्त्रिणा=सचिवेन। राजा=सिंहः।

एकमिति। एकं=मन्त्रिणमन्यं वा। प्रमाणं=प्रमाणभूतं, सर्वाधिकारिणम्। तं = मन्त्रिणम्। मोहात् = मौर्ख्यात्। मदः = गर्वः। दास्येन = राजसेवया। निर्विद्यते = खिद्यते। दुःखमनुभवति। निर्विण्णस्य=दुःखितस्य। स्वतन्त्रस्पृहा=

[1] 'तथाकारं' पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत्किमत्र युक्तम्' ?–इति ।

पिङ्गलकोऽपि चेतनां समासाद्य कथमपि तमाह—'सञ्जीवकस्तावत्प्राणसमो भृत्यः, स कथं ममोपरि द्रोहबुद्धिं करोति !' ।

दमनक आह—'देव ! 'भृत्यो भृत्य'–इति न [1]ऐकान्तिकमेतत् ।

उक्तञ्च—

न सोऽस्ति पुरुषो राज्ञां यो न कामयते श्रियम् ।
अशक्ता एव सर्वत्र नरेन्द्रं पर्युपासते ॥ २६४ ॥

पिङ्गलक आह—'भद्र ! तथापि मम तस्योपरि चित्तवृत्तिर्न विकृतिं याति । अथवा साध्विदमुच्यते—

अनेकदोषदुष्टोऽपि कायः कस्य न वल्लभः ? ।
कुर्वन्नपि व्यलीकानि यः प्रियः, प्रिय एव सः ॥२६५॥

दमनक आह—अत एवाऽयं दोषः ।

स्वातन्त्र्ये=स्वप्रभुत्वविषये लालसा । अभिद्रुह्यते=नृपतिं हन्तुं व्यवस्यति ॥२६३॥

युक्तम् = उचितम् । चेतनां = संज्ञां । समासाद्य=लब्ध्वा । कथमपि = कथमपि धृतधैर्यः । ऐकान्तिक=नियतम् । 'अनैकान्तिक' मिति पाठे—अनैकान्तिकं= व्यभिचारि । भृत्यः सर्वदा भृत्यभावमेव भजते, न कदाचिदपि ततो व्यभिचरतीति नास्ति नियमः, किन्तु भृत्योऽपि भृत्यभावं जहाति । अतो 'भृत्यो भृत्य एवे'ति व्यभिचरितमेवेत्याशयः ॥ २६३ ॥

पुरुषो नास्ति यो राज्ञां श्रियं=राजलक्ष्मीं, न कामयते=न अभिलषति । यद्वा-राज्ञां पुरुषः = राजसेवक इत्यन्वयः । श्रियम् = राजश्रियम् । सर्वेऽपि राजपदमभिवाञ्छन्त्येवेत्याशयः । किन्तु अशक्ताः = शक्तिविकलतयैव, राजानं पर्युपासते = भृत्यतया तं सेवन्ते ॥ २६४ ॥

विकृतिं न याति = मम चित्ते तं प्रति विरोधभावो नोदेति ॥ अनेकदोषदुष्टः = रोगादिदुष्टोऽपि । कायः = शरीरम् । कस्य न वल्लभः = न प्रियः । व्यलीकानि = विरुद्धानि-कुर्वन्नपि । प्रियः = प्रियजनः, प्रिय एव-न द्वेष्यः ॥२६५॥

---

१ 'अनैका'न्तिकमेतत्'—पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उक्तञ्च--

यस्मिन्नेवाऽधिकं चक्षुरारोपयति पार्थिवः ।
अकुलीनः, कुलीनो वा, स[1] श्रियो भाजनं नरः' ॥२६६॥

अपरं-'केन गुणविशेषेण स्वामी सञ्जीवकं निर्गुणकमपि निकटे धारयति' ? । अथ देव ! यद्येवं चिन्तयसि-'महाकायोऽयम् । अनेन रिपून्व्यापादयिष्यामि' इति, तदस्मान्न सिध्यति , यतोऽयं शष्पभोजी । देवपादानां पुनः शत्रवो मांसाऽशिनः ।

तद्रिपुसाधनमस्य साहाय्येन न भवति । तस्मादेनं दूषयित्वा हन्यताम्'-इति । पिङ्गलक आह—

उक्तो भवति यः पूर्वं 'गुणवा'निति संसदि ।
तस्य दोषो न वक्तव्यः प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा ॥ २६७ ॥

अन्यच्च-मयाऽस्य तव वचनेनाऽभयप्रदानं दत्तं, तत्कथं स्वयमेव व्यापादयामि ? । सर्वथा सञ्जीवकोऽयं सुहृदस्माकं, न तं प्रति मम[2] कश्चिन्मन्युरस्ति ।

अयं दोषः = राजविपत्तिरूपः । यस्मिन्नेव पुरुषे पार्थिवः-अधिकं चक्षुरारोपयति = स्नेहमाविष्करोति । स नरः-योग्यो वा, अयोग्यो वा । राजलक्ष्म्याः सम्पत्तेर्वा, भाजनं = पात्रं भवति ॥२६६॥

अपरं = किञ्च । स्वामी = भवान् । केन गुणविशेषेण निकटे धारयति = तं समीपे स्थापयति । 'महाकायोऽयं वृषभः, एतत्साहाय्येन शत्रून्मारयामी'त्येवं यदि भवान् चिन्तयति, तत्=भवच्चिन्तितम् । अस्मात्=वृषभात् । शष्पभोजी=घासाहारी । पुनः=किन्तु, देवपादानां = श्रीमच्चरणानां । तवेति यावत् । रिपवः=सिंहादयः । मांसाशिनः=मांसभोजिनः । रिपुसाधनं = शत्रुनाशनम् । एनं=सञ्जीवकं ।

दूषयित्वा=सन्दूष्य । यः पूर्वं संसदि = सभायाम् । गुणवानिति, उक्तः= कथितः, तस्य दोषः-प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा=स्वोक्तिविरोधभयातुरेण न वक्तव्यः ॥२६७॥

अस्य=सञ्जीवकस्य । तव=दमनकस्य । व्यापादयामि=हन्मि । सर्वथा =

---

१ 'स लक्ष्म्या हरते मनः' इति पाठान्तरम् । २ 'मम' इति क्वचिन्न ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उक्तञ्च—

'इतः स दैत्यः प्राप्तश्रीर्नेत एवाऽर्हति क्षयम् ।
विषवृक्षोऽपि संवर्द्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् ॥ २६८ ॥
आदौ न वा प्रणयिनां प्रणयो विधेयो,
दत्तोऽथवा प्रतिदिनं परिपोषणीयः ।
उत्क्षिप्य यत्क्षिपति तत्प्रकरोति लज्जां,
भूमौ स्थितस्य पतनाद्भयमेव नास्ति ॥ २६९ ॥
उपकारिषु यः साधुः, साधुत्वे तस्य को गुणः ? ।
अपकारिषु यः साधुः, स साधुः सद्भिरुच्यते ॥ २७० ॥

तद् द्रोहबुद्धेरपि मयाऽस्य न विरुद्धमाचरणीयम्' । दमनक आह—'स्वामिन् ! नैष राजधर्मो यद् [1]द्रोहबुद्धेरपि क्षम्यते । उक्तञ्च—

तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं मर्मज्ञं व्यवसायिनम् ।
अर्द्धराज्यहरं भृत्यं, यो न हन्यात्स हन्यते ॥ २७१ ॥

सर्वतो भावेन । सुहृत्=मित्रं, हितैषी । तं प्रति मम कश्चिदपि-मन्युः=क्रोधः । न=नैवास्ति ।

इत इति । इतः=मत्तः (प्रजापतेरेव) । सः = तारकासुरः । प्राप्तश्रीः=लब्ध-वरो, जातप्रभावश्च । इतः=मत्त एव । क्षयं=नाशम् । नार्हति=न योग्यः । स्वयम्=आत्मना । छेत्तुम्—असाम्प्रतम्=न युज्यते ॥ २६८ ॥

आदाविति । प्रणयिनाम्-'उपरी'ति शेषः । प्रणयः=स्नेहः । 'अपि देय' इति केचित्पठन्ति । दत्तः=विहितः । 'प्रणय' इति शेषः । परिपोषणीयः=वर्द्धनीयः । उत्क्षिप्य=उपरि नीत्वा । स्नेहं वर्द्धयित्वा । क्षिपति = नीचैर्नयति, तदेव लज्जां करोति=सन्तापयति । भूमौ स्थितस्येति । यथा—भूमौ स्थितो न पतति, तथैव स्नेहाऽनुबन्धाऽभावे तन्नाशजं दुःखं नास्त्येवेति भावः ॥ २३९ ॥

द्रोहबुद्धेः=मद्विरुद्धं चिन्तयतोऽपि, अस्य=सञ्जीवकस्य । विरुद्धं=विपरीतम् । राजधर्मः=राजव्यवहारः । तुल्यार्थं=समानवित्तम । तुल्यसामर्थ्यं=समानबलम् ।

---

१ 'द्रोहबुद्धिः' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपरं–'त्वयाऽस्य सखित्वात्सर्वोऽपि राजधर्मः परित्यक्तः। राजधर्माऽभावात्सर्वोऽपि परिजनो विरक्तिङ्गतः। यः सञ्जीवकः स शष्पभोजी, भवान्मांसाऽदः, तव प्रकृतयश्च। तत्तवाऽवन्ध्यव्यवसायबाह्यं कुतस्तासां मांसाशनम् ?। तद्रहितास्तास्त्वां त्यक्त्वा यास्यन्ति, ततोऽपि त्वं विनष्ट एव। अस्य सङ्गत्या पुनस्ते न कदाचिदाखेटके मतिर्भविष्यति।

उक्तञ्च—

यादृशैः सेव्यते भृत्यैर्यादृशांश्चोपसेवते।
कदाचिन्नाऽत्र सन्देहस्तादृग्भवति पूरुषः ॥ २७२ ॥

ममर्ज्ञ=रहस्यवेत्तारम्। व्यवसायिनम्=उद्योगशीलम्। अर्द्धराज्यहरं=राजतुल्यतया अर्द्धराज्यहरम्। प्रजाभिः स्तूयमानं, भृत्यं यः=राजा, न हन्यात्स स्वयं हन्यते=तेनाऽमात्यादिना हन्यते ॥ २७१ ॥

सखित्वात्=मित्रत्वात्। राजधर्मः=प्रजापालनादिः। 'त्वये'ति शेषः। परिजनः=अनुजीविवर्गः। यः सञ्जीवकस्तवानुचरमुख्यः स्थितः–स तु शष्पभोजी, अतः–कुतोऽनुजीविजनानां ततो भोजनलाभ इत्यन्वयः। तव प्रकृतयः=त्वत्प्रजानुचरसुहृदादिवर्गोऽस्मादृशः। 'मांसादा'-इति शेषः। 'स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च। सेनाङ्गानि प्रकृतयः–पौराणां श्रेणयोऽपि च ॥' इत्यमरः। तत्=तस्मात्। तव=भवतः। अवन्ध्यव्यवसायबाह्यं=त्वदीयप्रचण्डाऽमोघपराक्रमं विना। तासां=त्वत्प्रकृतीनाम्। मांसाशनं=मांसेन भोजनम्। कुतः=कथं स्यात्। त्वत्पराक्रमेणैव त्वदनुचराणां मांसभोजनं भवति, त्वया चेदानीं पराक्रमस्त्यक्त एवेति कथं प्रकृतिरक्षणं स्यादिति भावः।

तद्रहिताः=भो-नवर्जिताः। ततः=प्रकृतिविरहात्। नष्टः=विनष्ट एव। अस्य=शष्पभोजिनो वृषभस्य। आखेटके=मृगयायां। मतिः=बुद्धिः॥

यादृशैः=उत्तमाऽधममध्यमैः। उपसेवते=भजति। 'पुरुषस्तादृगेव भवती'त्यत्र सन्देहो नास्तीति सम्बन्धः ॥२७२॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा च—

सन्तप्ताऽयसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते,
मुक्ताऽऽकारतया तदेव नलिनीपत्त्रस्थितं राजते ।
स्वातौ सागरशुक्तिकुक्षिपतितं तज्जायते मौक्तिकं,
प्रायेणाऽधममध्यमोत्तमगुणः संवासतो जायते ॥२७३॥

तथा च—

असतां सङ्गदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम् ।
दुर्योधनप्रसङ्गेन भीष्मो गोहरणे गतः ॥२७४॥

अत एव सन्तो नीचसङ्गं वर्जयन्ति ।

उक्तञ्च—

न ह्यविज्ञातशीलस्य प्रदातव्यः प्रतिश्रयः ।
मत्कुणस्य च दोषेण हता मन्दविसर्पिणी ॥२७५॥

पिङ्गलक आह—'कथमेतत्' ? । सोऽब्रवीत्—

९. मन्दविसर्पिणी-मत्कुण-कथा ।

अस्ति कस्यचिन्महीपतेः कस्मिंश्चित्स्थाने मनोरमं शयनस्थानम् । तत्र शुक्लतरपटयुगलमध्यसंस्थिता मन्दविसर्पिणी नाम श्वेता यूका

सन्तप्तायसि = सन्तप्तलोहखण्डादौ । संस्थितस्य पयसः = जलस्य । नामापि न ज्ञायते । तदेव = जलमेव । मुक्ताकारतया राजते=शोभते । नलिनीपत्त्रस्थितं= कमलिनीदलगतं सत् । स्वाताविति । समुद्रस्थशुक्तिकोटरे स्वातिनक्षत्रस्थे सूर्ये पतितं, तत्=जलं–तन्मुक्ताकारतया परिणमतीत्यर्थः । संवासतः=सम्पर्कविशेषान्नरः–उत्तमो मध्यमोऽधमो वा जायते ॥२७३॥

असतां = दुष्टानाम् । साधवः = सज्जनाः । विक्रियां = विकारं । प्रसङ्गेन = सम्पर्केण । भीष्मोऽपि–गोहरणे = विराटनगरे गवाहरणार्थं । गतः=यातः ॥२७४॥

अविज्ञातशीलस्य = अविज्ञातस्वभावस्य । प्रतिश्रयः = आश्रयः । मत्कुणस्य= खट्वाकीटस्य । ('खटमल' इति प्रसिद्धस्य) । दोषेण=अपराधेन । मन्दविसर्पिणी नाम यूका । ('जूं' 'चीलर') । हता = राजपुरुषैर्हता ॥ २७५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतिवसति स्म। सा च तस्य महीपते रक्तमास्वादयन्ती सुखेन कालं नयमाना तिष्ठति।

अन्येद्युश्च तत्र शयने क्वचिद्भ्राम्यन्नग्निमुखो नाम मत्कुणः समायातः।

अथ तं दृष्ट्वा सा विषण्णवदना प्रोवाच—'भो अग्निमुख! कुतस्त्वमत्राऽनुचितस्थाने समायातः?। तद्यावन्न कश्चित्पश्यति[1] तावच्छीघ्रं गम्यताम्'—इति।

स आह—'भगवति! गृहाऽऽगतस्याऽसाधोरपि नैतद्युज्यते वक्तुम्। उक्तञ्च—

एह्यागच्छ समाश्वसाऽऽसनमिदं, कस्माच्चिराद् दृश्यसे?,
का वार्ता?, न्वतिदुर्बलोऽसि, कुशलं, प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात्।
एवं नीचजनेऽपि युज्यति गृहं प्राप्ते सतां सर्वदा,
धर्मोऽयं गृहमेधिनां निगदितः स्मार्तैर्लघुः स्वर्गदः ॥२७६॥

अपरं—मयाऽनेकमानुषाणामनेकविधानि रुधिराण्यास्वादितानि आहारदोषात्कटुतिक्तकषायाम्लरसास्वादानि। न च मया कदाचिन्मधुररक्तं समास्वादितम्। तद्यदि त्वं प्रसादं करोषि, तदस्य नृपतेर्विविधव्यञ्जनाऽन्नपानचोष्यलेह्यस्वाद्वाहारवशात्—अस्य शरीरे यन्मिष्टं रक्तं सञ्जातं तदास्वादनेन सौख्यं संपादयामि जिह्वायाः'—इति।

शयनस्थानं = शयनगृहम्। शुक्लेति। श्वेतवस्त्रद्वयसन्धिस्थिता। अन्येद्युः = कस्मिंश्चिद्दिने। मत्कुणः = रक्तपः खट्वाकीटः। विषण्णवदना = म्लानवदना भूत्वा। ('उदास मुख होकर')। अनुचितस्थाने = स्वावस्थानाऽयोग्ये स्थाने। राजशयनप्रच्छदपटे। गृहागतस्य = अतिथेः। असाधोः = दुष्टस्यापि। एतत् = ईदृशं वचः। आसनमिदं। 'गृहाणाऽत्रोपविशे'ति शेषः। 'नु'—इति वितर्के, अतिदुर्बलोसि = अतिदुर्बल इव प्रतिभासि। किं कारणं तद्वदेत्यर्थः। कुशलम् = अपि कुशलन्तव?। अयं धर्मः—गृहमेधिनाम् = गृहस्थानाम्। लघु यथा स्यात्तथा = द्रागेव। स्वर्गदः = स्वर्गप्रदः—स्मृतिवेदिभिरुक्तः॥ २७६॥

प्रसादम्—अनुग्रहम्। व्यञ्जनानि = नानाविधानि पक्वान्नानि, लवणमरि-

---

[1] 'कश्चिद्वक्ति' पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उक्तञ्च—

रङ्कस्य, नृपतेर्वापि जिह्वासौख्यं समं स्मृतम् ।
तन्मात्रं च स्मृतं सारं यदर्थं यतते जनः ॥ २७७ ॥
यद्येवं न भवेल्लोके कर्म जिह्वाप्रतुष्टिदम् ।
तन्न भृत्यो भवेत्कश्चित्कस्य चिद्वशगोऽथवा ॥ २७८ ॥
यदसत्यं वदेन्मर्त्यो, यद्वाऽसेव्यं च सेवते ।
यद्गच्छति विदेशं च, तत्सर्वमुदरार्थतः ॥ २७९ ॥

तन्मया गृहाऽऽगतेन बुभुक्षया पीड्यमानेन त्वत्सकाशाद्भोजनमर्थनीयं, तन्न त्वयैकाकिन्याऽस्य भूपते रक्तभोजनं कर्त्तुं युज्यते ।'

तच्छ्रुत्वा मन्दविसर्पिण्याह—'भो मत्कुण ! अहमस्य नृपतेर्निद्रावशं गतस्य रक्तमास्वादयामि, पुनस्त्वमग्रिमुखश्चपलश्च, तद्यदि मया सह रक्तपानं करोषि, तत्तिष्ठ, अभीष्टतरं रक्तमास्वादय ।

सोऽब्रवीत्—'भगवति ! एवं करिष्यामि, यावत्त्वं नाऽऽस्वादयसि प्रथमं नृपरक्तम्, तावन्मम देवगुरुकृतः शपथः स्यात्,—यदि तदास्वादयामि ।

एवं तयोः परस्परं वदतोः स राजा तच्छयनमासाद्य प्रसुप्तः ।

चार्द्रकादिघटितानि जिह्वासौख्यकराणि भक्ष्याणि वा । ('निमकीन' 'पक्वान्न') । अन्नपानादयः=भक्ष्य-पेयविशेषाः । रङ्कः = दरिद्रः । समं = तुल्यमेव । तन्मात्रं = जिह्वासौख्यमात्रं । सारं = जगति सारभूतम् । यदर्थं = जिह्वासौख्यार्थम् । लोकः = सकलोऽपि जनः । यतते=प्रयतते । जिह्वाप्रतुष्टिदं = जिह्वासौख्यप्रदम् । वशगः = परतन्त्रः । वदेत् = वदति । सम्भावनायां लिङ् । मर्त्यः = मनुष्यः । असेव्यं = नीचम् । उदरार्थतः=उदरपूर्त्तये—कुरुते ॥ २७९ ॥

गृहागतेन = अतिथिभूतेन । अर्थनीयम् = प्रार्थनीयम् । अग्निमुखः = तीक्ष्णविदाहिदंष्ट्रः । अभीष्टतरं=मधुरम् । एवं = यया त्वं भाषसे तथैव । देवगुरुकृतः शपथः = 'देवगुरुशापेनाहं दग्धः स्यां, यदि प्रथममहं नृपरक्तमास्वादयेयम्'—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथाऽसौ मत्कुणो जिह्वालौल्य-प्रकृष्टौत्सुक्याज्जाग्रतमपि तं महीपतिमदशत्। अथवा साध्विदमुच्यते—

'स्वभावो नोपदेशेन शक्यते कर्त्तुमन्यथा।
सुतप्तमपि पानीयं पुनर्गच्छति शीतताम् ॥ २८० ॥
यदि स्याच्छीतलो वह्निः, शीतांशुर्दहनात्मकः।
न स्वभावोऽत्र मर्त्यानां शक्यते कर्तुमन्यथा' ॥ २८१ ॥

अथाऽसौ महीपतिः सूच्यग्रविद्ध इव तच्छयनं त्यक्त्वा तत्क्षणादेवोत्थितः। [1]'प्राह–च–'अहो ! ज्ञायतामत्र प्रच्छादनपटे मत्कुणो, यूका वा नूनं तिष्ठति, येऽनाहं दष्टः'–इति। अथ ये कञ्चुकिनस्तत्र स्थितास्ते सत्वरं प्रच्छादनपटं गृहीत्वा, सूक्ष्मदृष्ट्या वीक्षाञ्चक्रुः।

अत्रान्तरे स मत्कुणश्चापल्यात्खट्वाऽन्तः[2] प्रविष्टः।

सा मन्दविसर्पिण्यपि वस्त्रसन्ध्यन्तर्गता तैर्दृष्टा, व्यापादिता च। अतोऽहं ब्रवीमि–'न ह्यविज्ञातशीलस्य'–इति।

एवं ज्ञात्वा त्वयैष वध्यो, नो चेत्त्वां व्यापादयिष्यति। उक्तञ्च—

त्यक्ताश्चाऽभ्यन्तरा येन, बाह्याश्चाऽभ्यन्तरीकृताः।
स एव मृत्युमाप्नोति मूखश्चण्डरवो[3] यथा ॥ २८२

इत्येवमादिः शपथः। तत्=राजरक्तम्। जिह्वाया लौल्यं=चाञ्चल्यं, तेन सहितं यत् प्रकृष्टमौत्सुक्यम्=औत्कण्ठ्यं, तस्मात्। 'जिह्वालौल्या'दिति व्यस्तोऽपि पाठः। अदशत्=अतुदत्।

अन्यथा कर्त्तुं=परिवर्त्तयितुम् ॥ २८० ॥

शीतांशुः=चन्द्रः। दहनात्मकः=तीक्ष्णप्रतापः। सर्वथा पुंसां स्वभावोऽन्यथा कर्तुं न शक्यते–इत्याशयः ॥ २८१ ॥

(प्रच्छादनपटः='चद्दर' 'सुजनी' 'चांदनी')।

कञ्चुकिनः=अन्तःपुररक्षकाः। ('चोबदार–' 'जमादार')। वीक्षाञ्चक्रुः=ददृशुः। अन्तरे=अवसरे। चापल्यात्=आशुगामित्वात्। तैः=कञ्चुकिभिः।

---

१ 'प्राह च' इति क्वचिन्न। २ 'खट्वाऽन्तं' पा। ३ 'यथा राजा ककुद्द्रुमः'। पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पिङ्गलक आह—'कथमेतत्' ? । सोऽब्रवीत्—

१० चण्डरव-शृगाल-कथा ।

कस्मिंश्चिद्वनप्रदेशे चण्डरवो नाम शृगालः प्रतिवसति स्म । स कदाचित्क्षुधाऽऽविष्टो जिह्वालौल्यान्नगरान्तरेऽनुप्रविष्टः ।

अथ तं नगरवासिनः सारमेया अवलोक्य सर्वतः शब्दायमानाः परिधान्य तीक्ष्णदंष्ट्राग्रैर्भक्षितुमारब्धाः । सोऽपि तैर्भक्ष्यमाणः प्राणभयात्प्रत्यासन्नं रजकगृहं प्रविष्टः । तत्र च नीलीरसपरिपूर्णं महाभाण्डं सज्जीकृतमासीत् । तत्र सारमेयैराक्रान्तो भाण्डमध्ये पतितः ।

अथ यावन्निष्क्रान्तस्तावन्नीलवर्णः सञ्जातः । तत्राऽपरे सारमेयास्तं शृगालमजानन्तो यथाऽभीष्टां दिशं जग्मुः ।

चण्डरवोऽपि दूरतरं प्रदेशमासाद्य काननाऽभिमुखं प्रतस्थे । न च नीलवर्णेन कदा चिन्निजरङ्गस्त्यज्यते ।

उक्तञ्च—

वज्रलेपस्य, मूर्खस्य, नारीणां, कर्कटस्य च ।
एको ग्रहस्तु मीनानां, नीली-मद्यपयोरपि[1] ॥ २८३ ॥

अथ तं हरगल-गरल-तमाल-समप्रभमपूर्वं सत्त्वमवलोक्य सर्वे

व्यापादिता = हता । आभ्यन्तराः = स्वबान्धवादयः । त्यक्ताः = उत्सारिताः । बाह्याः = असम्बन्धिनोऽबान्धवाश्च । अभ्यन्तरीकृताः = अन्तरङ्गतां नीताः । अधिकारस्थानेषु नियुक्ताश्च ॥ २८२ ॥

क्षुधाविष्टः=बुभुक्षितः । नगरान्तरे = नगरमध्ये । सारमेयाः = कुक्कुराः । सोऽपि=शृगालोऽपि । प्रत्यासन्नं=निकटवर्ति । रजकस्य=वस्त्रनिर्णेजकस्य । ('धोबी' 'रंगरेज') । महाभाण्डं = महत्पात्रम् । (बडा कुण्डा) । सज्जीकृतं=प्रगुणीकृत्य स्थापितम् । यथाभीष्टदिशं=स्वस्वस्थानाभिमुखम् । निजरङ्गः=नीलत्वं, ('रंग') ।

वज्रलेपः=सन्धिपिधानाय निर्मितो लेपभेदः । नीली=नीलीरसः,–(नीला रंग) । एको ग्रह इति । यदिमे गृह्णन्ति न तत्पुनः परित्यजन्ति–इत्याशयः ॥२८३॥

हरस्य = शम्भोः, गले–यद्गरलं, तच्च, तमालश्च = तापिच्छश्च, ताभ्यां समा

---

१ 'नीलामद्यपयोर्यथा' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सिंह-व्याघ्र-द्वीपि-वृक-[1]वानरप्रभृतयोऽरण्यनिवासिनो भयव्याकुलचित्ताः समन्तात्पलायनक्रियां कुर्वन्ति। कथयन्ति च–'न ज्ञायतेऽस्य कीदृग्विचेष्टितं, पौरुषं च ?। तद् दूरतरं गच्छामः।

उक्तञ्च—

न यस्य चेष्टितं विद्यान्न कुलं, न पराक्रमम्।
न तस्य विश्वसेत्प्राज्ञो यदीच्छेच्छ्रियमात्मनः ॥ २८४ ॥

चण्डरवोऽपि तान्भयव्याकुलितान्विज्ञायेदमाह–'भो भोः श्वापदाः ! किं यूयं मां दृष्ट्वैव सन्त्रस्ता व्रजथ ?। तन्न भेतव्यम्। अहं ब्रह्मणाऽद्य स्वयमेव सृष्ट्वाऽभिहितः—'यच्छ्वापदानां मध्ये कश्चिद्राजा नास्ति, तत्त्वं मयाऽद्य सर्वश्वापदप्रभुत्वेऽभिषिक्तः ककुद्द्रुमाभिधः। [2]ततो गत्वा क्षितितले तान्सर्वान्प्ररिपालय' इति। ततोऽहमत्रागतः। तन्मम च्छत्रच्छायायां सर्वैरेव श्वापदैर्वर्त्तितव्यम्। अहं ककुद्द्रुमो नाम राजा त्रैलोक्येऽपि सञ्जातः।

तच्छ्रुत्वा सिंह-व्याघ्र-पुरःसराः श्वापदाः–'स्वामिन् ! प्रभो ! समादिश' इति वदन्तस्तं परिवव्रुः।

अथ तेन सिंहस्याऽमात्यपदवी प्रदत्ता। व्याघ्रस्य—शय्यापालत्वम्। द्वीपिनस्ताम्बूलाऽधिकारः[3]। वृकस्य द्वारपालकत्वम्। ये चाऽऽत्मीयाः

प्रभा=कान्तिर्यस्य तम्,-हरगलगरलतमालसमप्रभं=गाढनीलवर्णं। सत्त्वं=जन्तुभेदम्। विचेष्टितं=स्वभावः। पौरुषं=पराक्रमः। तस्य=तं, प्राज्ञः=विद्वान्। श्रियं=कल्याणम् ॥ २८४ ॥

श्वापदाः=मांसादाः सिंहादयो मृगाः। अभिहितः=उक्तः। श्वापदप्रभुत्वे=सर्वमृगाधिपत्ये। छत्रच्छायायां=ममाधिपत्ये। त्रैलोक्ये=स्वर्गभूपातालेषु त्रिष्वपि लोकेषु–राजाहं संवृत्त इति सम्बन्धः। समादिश=आज्ञापय यत्कर्त्तव्यम्। परिवव्रुः=समन्ततस्तमावृत्य निषेदुः।

तेन=ककुद्द्रुमेण। शय्यापालत्वं=रात्रिशय्यारक्षकत्वम्। आत्मीयाः=स्वजातीयाः।

---

१ 'वानरे'ति क्वचिन्न। २ 'चण्डरवाभिधः'।
३ 'स्थगिकाधिकारः'=ताम्बूलवर्त्ताधिकारः। (पान की डिब्बी देना)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शृगालास्तैः सहाऽऽलापमात्रमपि न करोति ।

शृगालाः सर्वेऽप्यर्द्धचन्द्रं दत्त्वा निःसारिताः ।

एवं तस्य राज्यक्रियायां वर्त्तमानस्य ते सिंहादयो मृगान्व्यापाद्य तत्पुरतः प्रक्षिपन्ति । सोऽपि प्रभुधर्मेण सर्वेषां तान् प्रविभज्य प्रयच्छति ।

एवं गच्छति काले कदाचित्तेन सभागतेन[1] दूरदेशे शब्दायमानस्य शृगालवृन्दस्य कोलाहलोऽश्रावि । तं शब्दं श्रुत्वा पुलकिततनुरानन्दाश्रु-परिपूर्णनयन उत्थाय तारस्वरेण विरोतुमारब्धवान् ।

अथ ते सिंहादयस्तं तारस्वरमाकर्ण्य—'शृगालोऽय'मिति मत्वा, सलज्जमधोमुखाः क्षणमेकं स्थित्वा, मिथः प्रोचुः–'भोः! वाहिता वयमनेन क्षुद्रशृगालेन !। 'तद्बध्यता(मय)म्' इति ।

सोऽपि तदाकर्ण्य, पलायितुमिच्छँस्तत्र स्थान एव सिंहादिभिः खण्डशः कृतो, मृतश्च । अतोऽहं ब्रवीमि–'त्यक्ताश्चाभ्यन्तरा येन–' इति ।

तदाकर्ण्य पिङ्गलक आह—'भो दमनक ! कः प्रत्ययोऽत्र विषये यत्स ममोपरि दुष्टबुद्धिः ?' । स आह–'यदद्य ममाग्रे तेन निश्चयः कृतो यत्प्रभाते पिङ्गलकं वधिष्यामि, तदत्रैष[2] प्रत्ययः,–प्रभातेऽवसरवेलाया-मारक्तमुखनयनः स्फुरिताऽधरो दिशोऽवलोकयन्ननुचितस्थानोपविष्टस्त्वां क्रूरदृष्ट्या विलोकयिष्यति, एवं ज्ञात्वा यदुचितं तत्कर्तव्यम्' ।

प्रभुधर्मेण = स्वामित्वेन । तान्=मृगान् । प्रयच्छति = ददाति । सभागतेन= सर्वश्वापदमण्डलसभापरिगतेन । पुलकिततनुः=रोमाञ्चितशरीरः । तारस्वरेण = उच्चैः । विरोतुं=शब्दं कर्त्तुम् । तारस्वरं = दीर्घं शृगालशब्दं । मिथः = परस्परं । वाहिताः = भृत्यत्वं कारिताः । क्षुद्रशृगालेन = जम्बुकाधमेन । सः = शृगालः । तत् = सिंहादिवाक्यम् ।

प्रत्ययः = विश्वासजनकं प्रमाणम् । सः = सञ्जीवकः । अत्र = अस्मिन् मद्वचने । 'प्रत्ययः'–इत्यस्य य'दिति शेषः । अवसरवेलायाम् = राजदर्शनोचिते राजसभासमये । ('दर्बार' में) । आरक्तमुखनयनः=ईषद्रक्तमुखलोचनः । स्फुरिता-ऽधरः = कम्पमानाऽधरोष्ठः । दिशोऽवलोकयन् = शून्यदृष्टिरितस्ततो विलोकयन् ।

---

१ 'आस्थानगतेन' पाठा० । २ 'तदत्रैव' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

—इति कथयित्वा सञ्जीवकसकाशं गतस्तं प्रणम्योपविष्टः। सञ्जीवकोऽपि सोद्वेगाऽऽकारं मन्दगत्या समायान्तं तमुद्वीक्ष्य, सादरतरमुवाच—'भो मित्र! स्वागतं, चिराद् दृष्टोऽसि ?। अपि शिवं भवतः ?। तत्कथय येनाऽदेयमपि तुभ्यं गृहाऽऽगताय प्रयच्छामि ?। उक्तञ्च—

ते धन्यास्ते विवेकज्ञास्ते सभ्या इह भूतले।
आगच्छन्ति गृहे येषां कार्यार्थं सुहृदो जनाः ॥२८५॥

दमनक आह—'भोः! कथं शिवं सेवकजनस्य ?।

सम्पत्तयः पराऽऽयत्ताः, सदा चित्तमनिर्वृतम्।
स्वजीवितेऽप्यविश्वासस्तेषां-ये राजसेवकाः ॥२८६॥

तथा च—

सेवया धनमिच्छद्भिः सेवकैः पश्य यत्कृतम्।
स्वातन्त्र्यं यच्छरीरस्य मूढैस्तदपि हारितम् ॥२८७॥
तावज्जन्माऽपि[1] दुःखाय ततो दुर्गतता सदा।
तत्रापि सेवया वृत्तिरहो! दुःखपरम्परा ॥२८८॥
जीवन्तोऽपि मृताः पञ्च [2]श्रूयन्ते किल भारते।
दरिद्रो, व्याधितो, मूर्खः, प्रवासी, नित्यसेवकः ॥२८९॥

सोद्वेगाकारः=व्याकुलः। ('घबड़ाया हुआ')। शिवं=कल्याणम्। अदेयमपि=दातुमयोग्यमपि। विवेकज्ञाः=उचितानुचितज्ञाः। सुहृदः=सज्जनाः, मित्राणि, बान्धवाश्च ॥ २८५ ॥

सम्पत्तयः=सम्पदः। परायत्ताः=पराधीनाः। अनिर्वृतम्=सुखशून्यम्। मूढैः सेवकैर्यत्कृतं तत्पश्य—यत् शरीरस्वातन्त्र्यमपि हारितमिति सेवकनिन्दयम्।

तावदिति। तावत्=प्रथमं, जन्मैव—अतिदुःखफलम्, ततोऽपि दुर्गतता=दारिद्र्यं दुःखाय, तत्रापि यदि परसेवया, वृत्तिः=जीवनं, तर्हि महतीयं दुःखसन्ततिरित्यर्थः ॥ २८८ ॥

भारते=महाभारताख्ये इतिहासे। प्रवासी=सदा परदेशे निवसन् ॥ २८९ ॥

---

१ 'जन्माऽतिदुःखाय'। २ 'व्यासेन परिकीर्तिताः'—पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नाऽश्नाति स्वेच्छयौत्सुक्याद्विनिद्रो न प्रबुध्यते ।
न[1] निःशङ्कं वचो [2]ब्रूते, सेवकोऽप्यत्र जीवति ! ॥२९०॥
सेवा श्ववृत्तिराख्याता यैस्तैर्मिथ्या प्रजल्पितम् ।
स्वच्छन्दं चरति श्वाऽत्र, सेवकः परशासनात् ॥२९१॥
भूशय्या, ब्रह्मचर्यञ्च, कृशत्वं, लघुभोजनम् ।
सेवकस्य यतेर्यद्वद्विशेषः पाप-धर्मजः ॥२९२॥
शीताऽऽतपादिकष्टानि सहते यानि सेवकः ।
धनाय, तानि चाऽल्पानि यदि [3]धर्माय, मुच्यते ॥ २९३ ॥

स्वेच्छया—औत्सुक्यात् = औत्कण्ठ्यात् । विनिद्रः = विगतनिद्रः । अपूर्णनिद्र एव कार्यभारान्मध्य एव खण्डितनिद्रो जागर्त्तीत्याशयः । अत्र = संसारे । जीवति = प्राणधारणं करोति । यद्वा काकुरियं—किं सेवकोऽपि जीवति ? । अर्थात्—नैव । यतो मृततुल्य एवायमित्याशयः ॥ २९० ॥

सेवेति । 'सेवा श्ववृत्ति'रिति यैर्मन्वादिभिरुक्तं तैर्मिथ्यैवोक्तं, यतः श्वा तु स्वतन्त्रश्चरति, परं सेवकस्तु तदपि स्वातन्त्र्यं न लभते, सतु परशासनादेव प्रचलति इति महदनयोर्वैषम्यमिति भावः ॥ २९१ ॥ भूमिशय्यादिकं सर्वं सेवकस्य यतिना तुल्यमेव, परं यतिर्धर्माय सर्वमेतत् करोति, सेवकस्तु-पराराधनरूपाय पापायेति पाप-पुण्याभ्यामेव तयोर्भेद इति भावः ॥ २९२ ॥

धनाय = धनार्थं सेवामाचरन् सेवकः—यानि शीतातपादिकष्टानि सहते, तानि कष्टानि यदि धर्माय = धर्मोपार्जनार्थं सहते, तर्हि तत्तपःप्रभावात्सद्यो मुक्त एव स्यात् । परन्तु तादृशं कष्टं तपो धनाय सेवमानोऽपि न यथेच्छधनं लभते इति—महती विडम्बनेत्याशयः ॥ २९३ ॥

---

१ 'आहरन्नपि न स्वस्थः' इति पा० ।
२ 'वक्ति न स्वेच्छया किञ्चित्सेवकोऽपीह जीवति ॥' पा० ।
३ 'यदि धर्मान्न मुच्यते' इति मुद्रितपाठस्तु भ्रष्ट एव ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मृदुनाऽपि सुवृत्तेन सुमिष्टेनाऽपि हारिणा ।
मोदकेनाऽपि किं तेन, निष्पत्तिर्यस्य सेवया' ॥ २९४ ॥

सञ्जीवक आह—'अथ भवान्किं वक्तुमनाः ?' ।

सोऽब्रवीत्—'मित्र ! सचिवानां मन्त्रभेदं कर्त्तुं न युज्यते' ।

उक्तञ्च—

यो मन्त्रं स्वामिनो भिद्यात्साचिव्ये संनियोजितः ।
[1]स हन्ति नृपकार्यं तत्स्वयं च नरकं व्रजेत् ॥ २९५ ॥

'येन यस्य कृतो भेदः सचिवेन महीपतेः ।
तेनाऽशस्त्रवधस्तस्य कृत' इत्याह नारदः ॥ २९६ ॥

तथापि मया—तव स्नेहपाशबद्धेन मन्त्रभेदः कृतः, यतस्त्वं मम वचनेनाऽत्र राजकुले विश्वस्तः, प्रविष्टश्च ।

उक्तञ्च—

'विश्रम्भाद्यस्य यो मृत्युमवाप्नोति कथञ्चन ।
तस्य हत्या तदुत्था सा' प्राहेदं वचनं मनुः ॥ २९७ ॥

तत्तवोपरि पिङ्गलकोऽयं दुष्टबुद्धिः । कथितं चाऽद्याऽनेन मत्पुरतश्चतुष्कर्णतया, यत्—'प्रभाते सञ्जीवकं हत्वा समस्तमृगपरिवारं चिरात्तृप्तिं

सुवृत्तेन = गोलाकारेण, सुशीलेन च । हारिणा = मनोहरेण । मोदकेन = आनन्दप्रमोदप्रदेन धनेन, लड्डुकेन च । किं = किं फलं, यस्य निष्पत्तिः = प्राप्तिः ॥२९४॥ सचिवानाम् = अस्मद्विधानाम् । (दमनको हि सिंहसचिवः)। येन = सचिवेन । मन्त्रिणा । यस्य = राज्ञः । तेन = मन्त्रिणा । तस्य = राज्ञः ।

अशस्त्रेति । अस्त्रप्रयोगं विनापि, वधः = मारणमिव कृतम् । तत्कार्यनाशादित्यर्थः ॥ २९६ ॥ कृतः = मया कर्त्तुमारभ्यते । मन्त्रभेदं करोति—यत इति ।

विश्वस्तः = मद्वचने विश्वासं कृत्वैव । यस्य-विश्रम्भात् । तदुत्था = तद्वधजन्या । तस्य = यस्य वचसि विश्वासं कुर्वन्स प्राप्तस्तस्य ॥

---

१ 'स हृष्वा' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नेष्यामि'। ततः स मयोक्तः-'स्वामिन् ! न युक्तमिदं यन्मित्रद्रोहेण जीवनं क्रियते'।

उक्तञ्च--

अपि ब्रह्मवधं कृत्वा प्रायश्चित्तेन शुध्यति ।
तदर्हेण विचीर्णेन, न कथञ्चित्सुहृद्द्रुहः ॥ २९८ ॥

ततस्तेनाऽहं साऽमर्षेणोक्तः-'भो दुष्टबुद्धे! सञ्जीवकस्तावच्छष्पभोजी, वयं मांसाऽशिनः,तदस्माकं तेन 'स्वाभाविकं वैरमिति कथं रिपुरुपेक्ष्यते?'। तस्मात्सामादिभिरुपायैर्हन्यते । न च हते तस्मिन्दोषः स्यात् ।

उक्तञ्च—

दत्त्वाऽपि कन्यकां वैरी निहन्तव्यो विपश्चिता ।
अन्योपायैरशक्यो यो, हते दोषो न विद्यते ॥ २९९ ॥
कृत्याऽकृत्यं न मन्येत क्षत्रियो युधि सङ्गतः ।
प्रसुप्तो द्रोणपुत्रेण धृष्टद्युम्नः पुरा हत.' ॥ ३०० ॥

तदहं तस्य निश्चयं ज्ञात्वा त्वत्सकाशमिहाऽऽगतः । साम्प्रतं मे

चतुष्कर्णतया = केवलमेकाकिनो ममाग्रे । चिरादिति । सञ्जीवकसम्बन्धात्-चिरमसन्तुष्टं श्वापदकुलमिदानीं तृप्तिं नेष्यामीत्यर्थः । सः=पिङ्गलकः । मया = दमनकेन । मित्रद्रोहेण = सुहृद्भूतसञ्जीवकवधचिन्तनादिना । तदर्हेण = ब्रह्महत्यापापनाशकेन । विचीर्णेन = आचरितेन, प्रायश्चित्तेन—शुध्यति । न कथञ्चित्सुहृद्द्रुहः=मित्रद्रोही—कथमपि न शुध्यतीति सम्बन्धः । 'द्रुह' इति–इगुपधज्ञेति-कप्रत्ययान्तः ॥ २९८ ॥

सामर्षेण = सक्रोधेन । रिपुः = शत्रुः—सञ्जीवकः । सामादिभिः = कपटपूर्णैः सान्त्ववचनादिभिरुपायैर्विश्वास्य। दत्त्वेति । यो रिपुरन्यैस्पायैर्न हन्तुं शक्यते स कन्यकां=स्वपुत्रीं दत्त्वापि हन्तव्यः । जामातृभावमागतो जातविश्वासो रिपुर्हन्तव्य इत्याशयः । हते = शत्रौ हते ॥ २९९ ॥ कृत्येति । क्षत्रियो युद्धे प्रवृत्तः सन्, कृत्यमकृत्यं वा न मन्येत, येन केनाप्युपायेन शत्रुं हन्यादेवेत्यर्थः ।

---

१ 'तेने'ति क्वचिन्न ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नास्ति विश्वासघातकदोषः ! । मया सुगुप्तमन्त्रस्तव निवेदितः । अथ यत्ते प्रतिभाति तत्कुरुष्व'—इति ।

अथ सञ्जीवकस्तस्य तद्वज्रपातदारुणं वचनं श्रुत्वा मोहमुपागतः । अथ चेतनां लब्ध्वा सवैराग्यमिदमाह–'भोः ! साध्विदमुच्यते—

दुर्जनगम्या नार्यः प्रायेणाऽस्नेहवान्भवति[1] राजा ।
कृपणाऽनुसारि च धनं, मेघो गिरिदुर्गवर्षी[2] च ॥ ३०१ ॥
'अहं हि संमतो राज्ञो' य एवं मन्यते कुधीः ।
बलीवर्दः स विज्ञेयो विषाणपरिवर्जितः ॥ ३०२ ॥
वरं वनं, वरं भैक्ष्यं, वरं भारोपजीवनम् ।
[3]वरं विपन्मनुष्याणां, नाऽधिकारेण सम्पदः ॥ ३०३ ॥

तदयुक्तं मया कृतं,–यदनेन सह मैत्री विहिता ।

उक्तञ्च—

ययोरेव समं वित्तं, ययोरेव समं कुलम् ।
तयोर्मैत्री, विवादश्च, न तु पुष्ट-विपुष्टयोः ॥ ३०४ ॥

साम्प्रतम्=इदानीम् । वज्रपातदारुणं=वज्रपातवत्सुदुःसहं । मोहं=मूर्छाम् । 'सवैराग्य' मिति कथनक्रियाविशेषणम् ।

दुर्जनगम्याः=दुष्टजनानुरक्ताः । नार्यः=कामिन्यः । अस्नेहवान्=रूक्षः । धनं=वित्तं । लक्ष्मीः । कृपणानुसारि=कृपणगामि । गिरिदुर्गवर्षी=निष्फलं गिरिदुर्गेषु वर्षति, न सस्यान्वितेषु क्षेत्रेषु–इति भावः ॥ ३०१ ॥

बलीवर्दः=वृषभ इव । मूर्खत्वात् । विषाणपरिवर्जितः=शृङ्गरहितः ॥३०२॥

भैक्ष्यं=भिक्षाटनम् । भारोपजीवनम्=भृतिकर्म । विपत्=दारिद्र्यादिना क्लेश एव विपत्तिः । अधिकारेण=राजसेवया ॥ ३०३ ॥

अनेन=सिंहेन । वित्तं=धनम् । विवादश्च समानैरेव करणीयः । पुष्टविपुष्टयोः=धनिनिर्धनयोः, बलिनिर्बलयोश्च सख्यं विवादश्च न युक्त इत्यर्थः ॥ ३०४ ॥

---

१. 'अपात्रभृद्भवति राजा' । पा० । २.'गिरिजलधिवर्षी च' । ३.'व्याधिः' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा च--

मृगा मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति,
गावश्च गोभिस्तुरगास्तुरङ्गैः ।
मूर्खाश्च मूर्खैः, सुधियः सुधीभिः,
समानशील-व्यसनेषु सख्यम् ॥३०५॥

तद्यदि गत्वा तं प्रसादयामि, तथापि न प्रसादं यास्यति। उक्तञ्च—

निमित्तमुद्दिश्य हि यः प्रकुप्यति,
ध्रुवं स तस्याऽपगमे प्रशाम्यति ।
अकारणद्वेषपरो हि यो भवेत् ,
कथं नरस्तं परितोषयिष्यति ? ॥३०६॥

अहो ! साधु चेदमुच्यते—

भक्तानामुपकारिणां, परहितव्यापारयुक्तात्मनां,
सेवासंव्यहारतत्त्वविदुषां, द्रोहच्युतानामपि ।
व्यापत्तिः स्खलितान्तरेषु नियता, सिद्धिर्भवेद्वा न वा,
तस्मादम्बुपतेरिवाऽवनिपतेः सेवा सदाऽऽशङ्किनो ॥३०७॥

तुरगाः=अश्वाः । समानं शीलं, व्यसनञ्च येषां, तेषु=तुल्यस्वभावाचारेषु, सख्यम्=मैत्री । 'युज्यते' इति शेषः ॥ ३०५ ॥

तं=सिंहम् । प्रसादयामि=अनुनयादिभिः प्रसन्नं करोमि । प्रसादं = प्रसन्नताम् । निमित्तं=कारणम् । उद्दिश्य=अनुसन्धाय । तस्य=कोपकारणस्य । अपगमे=नाशे सति। प्रशाम्यति=प्रसीदति। कथमिति। न कथमपीत्यर्थः। सिंहश्चाऽकारणद्वेषीति भावः ॥ ३०६ ॥

परेति । परहितकारिव्यापारप्रसक्तानां, सेवाकर्ममर्मज्ञाना, सर्वभूतहितैषिणां, स्खलितान्तरेषु=अल्पीयस्यामपि त्रुटौ । व्यापत्तिः=विपत्तिः । नियता=निश्चितैव । सिद्धिः=सम्प्रसादादिलाभस्तु, भवेद्वा, न वा भवेत्—न निश्चयः । अम्बुपतेरिव=समुद्रस्येव । ('भक्ताना'—मित्यादिविशेषणानि समुद्रपक्षेऽपि योज्यानि) । अवनिपतेः=भूतपतेरपि। सेवा=अधिकारः। सदाशङ्किनी=शङ्कातङ्ककलङ्कितैवेत्यर्थः ।३०७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा च—

[1]भावस्निग्धैरुपकृतमपि द्वेष्यतां याति किञ्चि-[2]
च्छाठ्यादन्यैरपकृतमपि [3]प्रीतिमेवोपयाति ।
दुर्गाह्यत्वान्नृपतिमनसां नैकभावाश्रयाणां,
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥ ३०८ ॥

तत्परिज्ञातं मया यत्प्रसादमसहमानैः समीपवर्त्तिभिरेष पिङ्गलकः प्रकोपितः, तेनाऽयं ममाऽदोषस्याऽप्येवं वदति । उक्तञ्च—

प्रभोः प्रसादमन्यस्य न सहन्तीह सेवकाः ।
सपत्न्य इव संक्रुद्धाः सपत्न्याः सुकृतैरपि ॥ ३०९ ॥

भवति चैवं—यद् गुणवत्सु समीपवर्तिषु गुणहीनानां न प्रसादो भवति । उक्तञ्च—

गुणवत्तरपात्रेण च्छाद्यन्ते गुणिनां गुणाः ।
रात्रौ दीपशिखाकान्तिर्न भानावुदिते सति' ॥ ३१० ॥

भावस्निग्धैरुपकृतमपि=आराधितमपि, राज्ञां किञ्चित्=मनः । उपकारिणि द्वेष्यतामेव धत्ते । शाठ्यादन्यैरपकृतमपि च किञ्चिद्राज्ञां मनः प्रीतिं यातीत्यर्थः । 'द्वेषमायाति' इति तु युक्तः पाठः । यद्वा-लोके-भावस्निग्धैः=स्नेहास्कन्नमानसैर्भृत्यैः । उपकृतमपि अविगणय्य राजा द्वेषपरो भवति, केषाञ्चित् अनुपकृतमपि प्रीतये एव राज्ञो भवति । दुराराधनीयत्वाद्राज्ञश्चित्तानामित्यर्थः ॥ ३०८ ॥

प्रसादं = मयि राजकृपाम् । अदोषस्यापि–'विषये' इति शेषः । सपत्न्याः सुकृतैरपि=विनयपरचित्तानुवर्त्तनादिगुणैरपि, संक्रुद्धाः = सपत्न्य इव–राजभृत्याः साधोरपि राजसेवकस्योन्नतिं, राजप्रसादञ्च न सहन्ते इत्याशयः । सपत्न्यो हि (स्वसपत्नीषु स्वामिप्रसादं दृष्ट्वा) गुणवतीष्वपि स्वसपत्नीषु द्रोहमेवाचरन्ति, न स्नेहम् ॥ ३०९ ॥

गुणहीनानाम्–'उपरि राज्ञः' इति शेषः । गुणवत्तरपात्रेण=उत्कृष्टगुण-

---

१. 'स्निग्धैरेव ह्युपकृतिशतैर्द्वेष्यतामेति कश्चिच्छाठ्यादन्यैरपकृतिशतैः प्रीतिमेवोपयाति' । २. 'लोके, साक्षादन्यै'रिति पा० । ३. 'प्रीतये चोपयाति' पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दमनक आह—'भो मित्र ! यद्येवं तन्नास्ति ते भयम्, प्रकोपितोऽपि स दुर्जनैस्तव वचनरचनया प्रसादं यास्यति'।

स आह—'भो ! न युक्तमुक्तं भवता, लघूनामपि दुर्जनानां मध्ये वस्तुं[1] न शक्यते। उपायाऽन्तरं विधाय ते नूनं घ्नन्ति।

उक्तञ्च—

बहवः पण्डिताः क्षुद्राः सर्वे मायोपजीविनः।
कुर्युः कृत्यमकृत्यं वा उष्ट्रे काकादयो यथा ॥ ३११ ॥

दमनक आह—'कथमेतत्' ?। सोऽब्रवीत्—

११ मदोत्कटसिंहोष्ट्र-काकादिकथा।

कस्मिंश्चिद्वनोद्देशे मदोत्कटो नाम सिंहः प्रतिवसति स्म। तस्य चाऽनुचरा अन्ये द्वीपि-वायस-गोमायवः सन्ति।

अथ कदाचित्तैरितस्ततो भ्रमद्भिः सार्थभ्रष्टः क्रथनको नामोष्ट्रो दृष्टः।

अथ सिंह आह—'अहो ! अपूर्वमिदं सत्त्वं, तज्ज्ञायतां किमेतदारण्यकं, ग्राम्यं वा' ?—इति। तच्छ्रुत्वा वायस आह—'भो स्वामिन् ! ग्राम्योऽयमुष्ट्रनामा जीवविशेषस्तव भोज्यः, तद् व्यापाद्यताम्।'

सिंह आह—'नाऽहं गृहमागतं हन्मि'। उक्तञ्च—

गृहे शत्रुमपि प्राप्तं विश्वस्तमकुतोभयम्।
यो हन्यात्तस्य पापं स्याच्छतब्राह्मणघातजम् ॥ ३१२ ॥

शालिना। सामान्यगुणिनां—गुणाः छाद्यन्ते=अभिभूयन्ते। यतो रात्रौ दीपका भान्ति, न प्रभाते रवावुदिते सति इति भावः ॥ ३१० ॥

यद्येवं=यदि त्वं न दोषी। वचनरचनया—वाक्चातुर्यादिगुणैर्मुग्धः, प्रसादं=प्रसन्नताम्। ते = दुर्जनाः। मायोपजीविनः=कूटकपटरचनाकुशलाः, दाम्भिकाः। कृत्यम् = करणीयमुचितम्। अकृत्यम् = अनुचितमपि ॥ ३११ ॥

वनोद्देशे कान्तारप्रदेशे। द्वीपि—वायस-गोमायवः=व्याघ्रकाकजम्बुकाः। सार्थ-

---

१. 'वक्तुं' पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तदभयप्रदानं दत्त्वा मत्सकाशमानीयतां–येनाऽस्यागमनकारणं पृच्छामि। अथाऽसौ सर्वैरपि विश्वास्याऽभयप्रदानं दत्त्वा मदोत्कट-सकाशमानीतः, प्रणम्योपविष्टश्च। ततस्तस्य पृच्छतस्तेनाऽऽत्मवृत्तान्तः सार्थभ्रंशसमुद्भवो निवेदितः।

ततः सिंहेनोक्तम्–'भो क्रथनक! मा त्वं ग्रामं गत्वा भूयोऽपि भारोद्वहनकष्टभागी भूयाः, तदत्रैवाऽरण्ये निर्विशङ्को मरकतसदृशानि शष्पाऽग्राणि भक्षयन्मया सह सदैव वस।'

सोऽपि 'तथा'–इत्युक्त्वा तेषां मध्ये विचरन्न कुतोऽपि भयमिति सुखेनाऽऽस्ते।

अथाऽन्येद्युर्मदोत्कटस्य महागजेनाऽरण्यचारिणा सह युद्धमभवत्। ततस्तस्य दन्तमुसलप्रहारैर्व्यथा सञ्जाता। व्यथितः कथमपि प्राणैर्न वियुक्तः।

अथ शरीराऽसामर्थ्यान्न कुत्रचित्पदमपि चलितुं शक्नोति। तेऽपि सर्वे काकादयोऽप्रभुत्वेन क्षुधाऽऽविष्टाः परं दुःखं भेजुः।

अथ तान्सिंहः प्राह–'भोः! अन्विष्यतां कुत्रचित्किञ्चित्सत्त्वं, येनाहमेतामपि दशां प्राप्तस्तद्भक्ष्य युष्मद्भोजनं सम्पादयामि।'

अथ ते चत्वारोऽपि भ्रमितुमारब्धाः, यावन्न किञ्चित्सत्त्वं पश्यन्ति, तावद्वायसशृगालौ परस्परं मन्त्रयतः।

भ्रष्टः = वणिग्जनसमूहभ्रष्टः। आरण्यकं = वनचारि। ('जङ्गली')। विश्वस्तं = विश्वासमुपगतम्। अकुतोभयम् = निर्विशङ्कम्। ३१२॥

अस्य=उष्ट्रस्य। असौ=उष्ट्रः। सर्वैः=वायसादिभिः। तस्य=सिंहस्य। सार्थभ्रंशसमुद्भवः = वणिक्सङ्घवियोगमूलः। भूयः=पुनरपि। शष्पाग्राणि=घासाङ्कुरान्। इति = इत्यस्मात्कारणात्। सिंहरक्षितत्वेन निर्भयः। अरण्यचारिणा = वन्येन।

तस्य = सिंहस्य। गजस्य दन्ता एव मुसलाः तैर्ये प्रहाराः=आघाताः, तैः। कथमपि=आयुःशेषादेव। प्राणैर्न वियुक्तः=न मृतः। शरीराऽसामर्थ्यात् = चेष्टायां शरीरस्याऽसमर्थत्वात्। अप्रभुत्वेन=प्रभुप्रसादाऽलाभेन, अशक्तत्वाच्च। भेजुः = प्रापुः। एतामपि = क्षीणामपि। तत् = सत्त्वम्। मन्त्रयतः =

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शृगाल आह—'भो वायस ! किं प्रभूतभ्रान्तेन, अयमस्माकं प्रभोः क्रथनको विश्वस्तस्तिष्ठति, तदेनं हत्वा प्राणयात्रां कुर्मः ।

वायस आह—युक्तमुक्तं भवता, परं स्वामिना तस्याऽभयप्रदानं दत्तमस्ति[1]—'न वध्योऽय'मिति ।'

शृगाल आह—'भो वायस ! अहं स्वामिनं विज्ञाप्य तथा करिष्ये यथा स्वामी वधं करिष्यति । तत्तिष्ठन्तु भवन्तोऽत्रैव, यावदहं गृहं गत्वा, प्रभोराज्ञां गृहीत्वा चाऽऽगच्छामि ।'

एवमभिधाय सत्वरं सिंहमुद्दिश्य प्रस्थितः । अथ सिंहमासाद्येदमाह—'स्वामिन् ! समस्तं वनं भ्रान्त्वा वयमागताः, न किञ्चित्सत्त्वमासादितं, तत्किं कुर्मो वयम् ? । संप्रति वयं बुभुक्षया पदमेकमपि प्रचलितुं न शक्नुमः । देवोऽपि पथ्याशी वर्त्तते, तद्यदि देवाऽऽदेशो भवति, तदा क्रथनकपिशितेनाऽद्य पथ्यक्रिया क्रियते ।'

अथ सिंहस्तस्य तद्दारुणं वचनमाकर्ण्य सकोपमिदमाह—'धिक्पापाधम ! यद्येवं भूयोऽपि वदसि, ततस्त्वां तत्क्षणमेव वधिष्यामि, यतो मया तस्याऽभयप्रदानं प्रदत्तं, तत्कथं स्वयमेव व्यापादयामि ? ।

उक्तञ्च—

'न गोप्रदानं, न महीप्रदानं,
न चाऽन्नदानं हि तथा प्रधानम् ।
यथा वदन्तीह बुधाः प्रधानं,
सर्वप्रदानेष्वभयप्रदानम्' ॥ ३१३ ॥

विचारं चक्रतुः । प्रभूतेन = बहुलेन । भ्रान्तेन = भ्रमणेन । प्रभोर्विश्वस्तः = राजानुगृहीतः । प्राणधारणां = शरीरयात्राम् । परं = किन्तु । वधं = क्रथनकवधं । पथ्याशी = पथ्यभोजी । ('पथ्य लेते हैं') । पिशितेन = रुधिरेण । पथ्यंक्रिया = भवतां पथ्यस्य सम्पादनम् ।

---

१ 'दत्तमास्ते'—पा० । २ 'अनुमन्यते' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तच्छ्रुत्वा शृगाल आह–'स्वामिन् ! यद्यभयप्रदानं दत्वा वधः क्रियते तदैष[1] (ते) दोषो भवति, पुनर्यदि देवपादानां भक्त्या स आत्मनो जीवितव्यं स्वयमेव[1] प्रयच्छति, [2]ततो न दोषः । [3]तद्यदि स स्वयमेवाऽऽत्मानं वधाय नियोजयति, [4]तदा वध्यः । अन्यथाऽस्माकं मध्यादेकतमो वध्य[5]–इति ।' यतो देवपादाः पथ्याशिनः क्षुन्निरोधादन्यादृशीं[6] दशां यास्यन्ति, तत्किमेतैः प्राणैरस्माकं, ये स्वाम्यर्थे न यास्यन्ति । [7]अपरं–यदि स्वामिपादानां किञ्चिदनिष्टं भविष्यति, तदा पश्चादप्यस्माभिर्वह्निप्रवेशः[8] कार्य एव । उक्तञ्च—

यस्मिन्कुलेः यः पुरुषः [9]प्रधानं,
[10]स सर्वयत्नैः परिरक्षणीयः ।
तस्मिन्विनष्टे हि कुलं विनष्टं,
[11]न नाभिभङ्गे ह्यरका वहन्ति ॥ ३१४ ॥

दारुणं = क्रूरम् । तस्य = क्रथनकस्य । प्रधानम् = उत्तमम् । एष दोषः = विश्वस्तवधजं पापम् । सः = उष्ट्रः । जीवितव्यं = प्राणान् । प्रयच्छति = समर्पयति । नियोजयति = ददाति । तत् = तदा । अन्यथा = यदि स्वयं न स आत्मानं वधाय ददाति, तदा । एकतमः = एकः कश्चित् । देवपादाः = भवन्तः । पूजायामत्र पादशब्दो, बहुत्वञ्च । पथ्याशिनः = अचिरनिर्मुक्तरोगाः । क्षुन्निरोधात् = बुभुक्षानिरोधात् । अन्यादृशीम् = अनिर्वचनीयाम्, क्षीणतराम् । एतैः = अस्मदीयैः । पश्चादपि = भवन्मरणानन्तरमपि । वह्निप्रवेशः = स्वामिवियोगादग्नौ पातः । अनिष्टं = मरणम् ।

प्रधानं = मुख्यः । तस्मिन् = प्रधाने । आशु = शीघ्रमेव । नश्येत् = विलयं गच्छेत् । नाभिभङ्गे = रथचक्रमध्यस्थपिण्डिकाभङ्गे । अरकाः = रथाङ्गदण्डाः । अरा

---

१ क्वचिन्न । २ 'तन्न दोष.' । ३ 'ततो यदि' । ४ 'तद्वध्यः' पा० । ५ 'भक्षणीयः' इति पा० । ६ 'अन्त्याम्', 'अन्याम्' । ७ 'अपरं-पश्चादप्यस्माभिर्वह्निप्रवेशः कार्यो, यदि स्वामिपादानां किञ्चिदनिष्टं भविष्यति' पा० । ८ 'पृष्ठतोऽपि' । ९ 'प्रधानः' । १० 'सदैव यत्नेन स रक्षणीयः' । ११ 'तस्मिन्विनष्टे कुलसारभूते' इति, 'कुलं विनश्येत्' इति च पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तदाकर्ण्य मदोत्कट आह—'यद्येवं तत्कुरुष्व यद्रोचते' (इति)। तच्छ्रुत्वा स सत्वरं गत्वा तानाह—'भोः! स्वामिनो महत्यवस्था वर्त्तते, तत्किं पर्यटितेन ?' तेन विना कोऽत्राऽस्मान् रक्षयिष्यति ? ।

तद् गत्वा तस्य क्षुद्रोगात्परलोकं प्रस्थितस्य स्वयं गत्वाऽऽत्मशरीरदानं कुर्मः। येन स्वामिप्रसादस्याऽनृणतां गच्छामः।

उक्तञ्च—

आपदं प्राप्नुयात्स्वामी यस्य भृत्यस्य पश्यतः।
प्राणेषु विद्यमानेषु स भृत्यो नरकं व्रजेत्' ॥ ३१५ ॥

तदनन्तरं ते सर्वे बाष्पपूरितदृशो मदोत्कटं प्रणम्योपविष्टाः। तान्दृष्ट्वा मदोत्कट आह-'भोः ! प्राप्तं, दृष्टं वा किञ्चित्सत्त्वम्' ? ।

अथ तेषां मध्यात्काकः प्रोवाच-स्वामिन् ! वयं तावत्सर्वत्र पर्यटिताः, परं न किंचित्सत्त्वमासादितं, दृष्टं वा। तदद्य मां भक्षयित्वा प्राणान्धारयतु स्वामी, येन देवस्याऽऽश्वासनं भवति, मम पुनः स्वर्गप्राप्तिरिति।

उक्तञ्च—

स्वाम्यर्थे यस्त्यजेत्प्राणान् भृत्यो भक्तिसमन्वितः।
परं स पदमाप्नोति जरामरणवर्जितम् ॥ ३१६ ॥

तच्छ्रुत्वा शृगाल आह—'भोः ! स्वल्पकायो भवान्, तव भक्षणात्स्वामिनस्तावत्प्राणयात्रा न भवति, अपरो दोषश्च तावत्समुत्पद्यते।

एव-अरकाः। स्वार्थिकः कन्। 'अरो ना तु चक्रविष्कम्भदारुणी'ति केशवः। 'अरो रथाङ्गदण्डेऽपि' इति कोशः। वहन्ति = प्रचलन्ति ॥ ३१४ ॥

महती=अतिविपन्ना। क्षुद्रोगात्=बुभुक्षारूपरोगात्। प्रस्थितस्य=गन्तुमुद्युक्तस्य। आदिकर्मणि क्तः। प्राप्तं = लब्धम्। आश्वासनं = शरीरधारणं। 'आप्यायनम्', 'आप्यायना' इति च क्वचित् पाठः। स्वाम्यर्थे = प्रभोरर्थे। सः-जरामरणवर्जितं=जरामृत्युविवर्जितं। ब्रह्मणः-परं पदं=ब्रह्मलोकम् ॥३१६॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उक्तञ्च—

काकमांसं शुनोच्छिष्टं[1] स्वल्पं तदपि दुर्लभम् ।
भक्षितेनाऽपि किं तेन, तृप्तिर्येन न जायते ॥ ३१७ ॥

तद्दर्शिता स्वामिभक्तिर्भवता, गतं चाऽनृण्यं भर्तृपिण्डस्य, प्राप्तश्चोभयलोके साधुवादः[2] । तदपसराऽग्रतः, [3]येनाऽहमपि स्वामिनं विज्ञापयामि ।

तथाऽनुष्ठिते शृगालः सादरं प्रणम्य प्रोवाच-'स्वामिन् ! मां भक्षयित्वाऽद्य प्राणयात्रां विधाय ममोभयलोकप्राप्तिं कुरु ।

उक्तञ्च—

स्वाम्यायत्ताः सदा प्राणा भृत्यानामर्जिता धनैः ।
यतस्ततो[4] न दोषोऽस्ति, तेषां ग्रहणसम्भवः' ॥ ३१८ ॥

अथ तच्छ्रुत्वा द्वीप्याह-'भोः ! साधूक्तं भवता । पुनर्भवानपि स्वल्पकायः, स्वजातिश्च,-नखायुधत्वादभक्ष्य एव ।

उक्तञ्च—

नाऽभक्ष्यं भक्षयेत्प्राज्ञः प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
विशेषात्तदपि स्तोकं लोकद्वयविनाशकम् ॥ ३१९ ॥

दोषः = अनौचित्यम् । काकमांसमपि-शुना = कुक्कुरेण, उच्छिष्टं = भुक्त्वा परित्यक्तम् ॥ ३१७ ॥

भर्तृपिण्डस्य=राजान्नस्य । गतं=लब्धम् । प्राप्तं । ('नमकहलाल') । उभयलोके= इह लोके, परलोके च । साधुवादः = 'साधु काकेन भाषित' मिति प्रशंसा ।

अग्रतः अपसर = दूरीभव । ('आगे से हटो') । यतः-धनैः, अर्जिताः = उपार्जिताः, भृत्यानां प्राणाः, अतः स्वाम्यायत्ताः = राजाधीनाः । तेषां=प्राणानां, शरीरस्य च, ग्रहणसम्भवः = भृत्यवधजन्यः । 'ग्रहणसम्भवे' इति पाठान्तरम् । न दोषोऽस्ति = राज्ञो दोषो नास्ति ॥ ३१८ ॥

---

१ 'तथोच्छिष्टम्' । २ 'प्राप्ता लोकद्वयेऽपि साधुता' ।
३ 'अहं स्वामिनं विज्ञपयामि' । 'येने'ति क्वचिन्न । ४ 'तेन न' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तद्दर्शितं त्वयाऽऽत्मनः कौलीन्यम् । अथवा साधु चेदमुच्यते—

एतदर्थं कुलीनानां नृपाः कुर्वन्ति संग्रहम् ।
आदिमध्याऽवसानेषु न ते गच्छन्ति विक्रियाम् ॥ ३२० ॥

तदपसराऽग्रतः, येनाहमपि[1] स्वामिनं विज्ञापयामि' । तथाऽनुष्ठिते द्वीपी प्रणम्य मदोत्कटमाह–'स्वामिन् ! क्रियतामद्य मम प्राणैः प्राणयात्रा । दीयतामक्षयो वासः स्वर्गे । मम विस्तार्यतां क्षितितले प्रभूततरं यशः । तन्नाऽत्र विकल्पः कार्यः । उक्तञ्च—

मृतानां[2] स्वामिनः कार्ये भृत्यानामनुवर्तिनाम् ।
भवेत्स्वर्गेऽक्षयो वासः, कीर्तिश्च धरणीतले' ॥ ३२१ ॥

तच्छ्रुत्वा क्रथनकश्चिन्तयामास—'एतैस्तावत्सर्वैरपि शोभनानि वाक्यानि प्रोक्तानि, न चैकोऽपि स्वामिना विनाशितः, तदहमपि प्राप्तकालं विज्ञापयामि, येन मम वचनमेते त्रयोऽपि [3]समर्थयन्ति ।' इति निश्चित्य प्रोवाच–'भोः ! [4]सत्यमुक्तं भवता, परं भवानपि नखायुधः, तत्कथं भवन्तं स्वामी भक्षयति ? ।

उक्तञ्च—

मनसाऽपि स्वजात्यानां योऽनिष्टानि प्रचिन्तयेत् ।
[5]भवन्ति तस्य तान्येव इह लोके, परत्र च ॥ ३२२ ॥

द्वीपी=व्याघ्रः । पुनः=किन्तु । नाभक्ष्यमिति । यदा—तदपि=अभक्ष्यमपि । विशेषात् = विशेषतः । स्तोकं = यदि स्वल्पं भवेदिति सम्बन्धः ॥ ३१९ ॥

आदिमध्यावसानेषु=सम्पत्सु, विपत्सु च । विक्रियां=विकारं, भावान्तरञ्च ॥३२०॥

विकल्पः=संशयः । अनुवर्त्तिनाम्=आज्ञापालकानाम् ॥ ३२१ ॥

शोभनानि = प्रशंसापराणि चाटूनि प्रार्थनावाक्यानि । प्राप्तकालम्=अवसरोचितम् । समर्थयन्ति=प्रशंसन्ति । 'विघटयन्ती' ति पाठे—खण्डयन्तीत्यर्थः । भवान् = व्याघ्रः । मनसापीति । तानि=अनिष्टानि । परत्र=परलोके च ॥३२२॥

---

१ अपिः क्वचिन्न । २ 'स्थितानाम्' । ३ 'त्रयोऽपि विघटयन्ती'ति लिखितपुस्तकपाठो मनोहरः । ४ 'युक्तम्' । ५ 'तस्य लोकद्वयं नास्ति भवेच्चाऽशुचिकीटक' ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तदपसराऽग्रतः, येनाहं स्वामिनं विज्ञापयामि। तथाऽनुष्ठिते क्रथनकोऽग्रे स्थित्वा प्रणम्योवाच–'स्वामिन्! एते तावदभक्ष्या भवतां, तन्मम प्राणैः प्राणयात्रा विधीयतां, येन ममोभयलोकप्राप्तिर्भवति।

उक्तश्च—

न यज्वानोऽपि गच्छन्ति तां गतिं, नैव योगिनः।
यां [1]यान्ति प्रोज्झितप्राणाः स्वाम्यर्थे सेवकोत्तमाः' ॥ ३२३ ॥

एवमभिहिते [2]सिंहानुज्ञाताभ्यां शृगालचित्रकाभ्यां विदारितोभयकुक्षिः, काकेनोत्पाटितनयनः[3] क्रथनकः प्राणानत्याक्षीत्।

ततश्च तैः [4]क्षुद्रपण्डितैः सर्वैर्भक्षितः। अतोऽहं ब्रवीमि–'बहवः पण्डिताः क्षुद्राः'–इति।

तद्भद्र! क्षुद्रपरिवारोऽयन्ते राजा मया सम्यग्ज्ञातः, सतामसेव्यश्च।

उक्तश्च—

अशुद्धप्रकृतौ राज्ञि जनता नाऽनुरज्यते।
यथा गृध्रसमासन्नः कलहंसः समाचरेत् ॥ ३२४ ॥

यज्वानः= यज्ञकर्त्तारः। 'यज्वा तु विधिनेष्टवान्' इत्यमरः। प्रोज्झितप्राणाः=त्यक्तप्राणाः, मृताः ॥ ३२३ ॥

चित्रकः=व्याघ्रः। विदारितोभयकुक्षिः=विदारितोदरपार्श्वयुगलः। क्षुद्रारपीडितैः=क्षुधापीडितैः। पाठान्तरे–क्षुद्रपण्डितैः–नीचकर्मपटुभिरित्यर्थः। क्षुद्रपरिवारः=क्षुद्रानुचरपरिवृतः। अशुद्धाः–प्रकृतयः=अमात्यादयः परिवारा यस्यासौ–अशुद्धप्रकृतिः, तस्मिन्=नीचपरिवृते। गृध्रासन्नो हंसो हि गृध्रवदेव समाचरति, सङ्गवशात्, एवं नीचपरिवृतो राजा स्वयं साधुरपि न प्रजारञ्जक इति हंसो यथा काकपरिवृतो दूरतः परिहार्यो भवति, तथा तादृशो राजाऽपि दुष्टगणपरिवृतस्त्याज्य एवेत्याशयः ॥ ३२४ ॥

---

१. 'स्वाम्यर्थे प्रोज्झितप्राणा यां गतिं यान्ति सेवकाः।' २. 'ताभ्यां' पा०।
३. 'क्वचिन्न। ४. 'क्षुद्धारपीडितैः' इति लिखिते पाठः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा च--

गृध्राऽऽकारोऽपि सेव्यः स्याद्धंसाऽऽकारैः सभासदैः ।
हंसाऽऽकारोऽपि सन्त्याज्यो गृध्राकारैः स तैर्नृपः ॥ ३२५ ॥

तन्नूनं ममोपरि केनचिद् दुर्जनेनाऽयं प्रकोपितः, तेनैवं वदति। अथवा भवत्येतत् ।

उक्तञ्च--

मृदुना सलिलेन हन्यमाना-
न्यवघृष्यन्ति[1] गिरेरपि स्थलानि ।
उपजापविदां च कर्णजापैः
किमु चेतांसि मृदूनि मानवानाम् ॥३२६॥

कर्णविषेण च भग्नः
किं किं न करोति बालिशो लोकः ? ।
क्षपणकतामपि धत्ते !
पिबति सुरां नरकपालेन ! ॥ ३२७ ॥

गृध्राकारः=दुष्टस्वभावः । हंसाकारैः=सद्भिः । सभासदैः=अमात्यादिवर्गैः । उपलक्षितः-सेव्यः । तैः=अमात्यादिभिः ॥ ३२५ ॥

मृदुनेति । अवघृष्यन्ति=हीयन्ते । (गड्ढे पड़ जाते हैं) । उपजापविदां= भेदकर्मकुशलानां । कर्णजापैः=निन्दावाक्यैः ॥ ३२६ ॥

कर्णविषेण=कर्णे दुष्टैः कथितेन दुर्वाक्यजालेन । (ताना) । भग्नः= वञ्चितः, विकारं प्राप्तश्च, ('बिगड़ा हुआ') । बालिशः=मूर्खः । क्षपणकतां= नग्नतां धत्ते, नरकपालेन मद्यञ्च पिबति, परप्रतारितो मूर्खलोकः । अनेन जैन-कापालिकमतमपि कटाक्षितम् ॥ ३२७ ॥

---

१. 'खन्यमानान्यवपुष्यन्ती'ति लिखितपुस्तकपाठः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथवा साध्विदमुच्यते—

पादाहतोऽपि, दृढदण्डसमाहतोऽपि,
यं दंष्ट्रया स्पृशति तं किल हन्ति सर्पः ।
कोऽप्येष एव पिशुनोऽस्त्यमनुष्यधर्मा[1],
कर्णे परं[2] स्पृशति, हन्ति परं समूलम् ॥ ३२८ ॥

तथा च—

अहो खलभुजङ्गस्य विपरीतो वधक्रमः ।
कर्णे लगति चैकस्य, प्राणैरन्यो वियुज्यते ३२९ ॥

तदेवं गतेऽपि किं कर्तव्यमित्यहं त्वां सुहृद्भावात्पृच्छामि ।'

दमनक आह-'तद्देशान्तरगमनं युज्यते, नैवंविधस्य[3] कुस्वामिनः सेवां विधातुम् ।

उक्तञ्च—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याऽकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते, ॥ ३३० ॥

सञ्जीवक आह—'अस्माकमुपरि स्वामिनि कुपिते गन्तुं न शक्यते, न चाऽन्यत्र गतानामपि निर्वृतिर्भवति ।

पादेति । पादताडितो, दण्डाहतश्च सर्पो दशति । परं-पिशुनः=खलस्तु, कोऽपि-अमनुष्यधर्मा=अलौकिकसामर्थ्यशाली-अस्ति, यः कर्णे-परम्=अन्यम् । अपरञ्च-समूलम् = सानुबन्धम् ॥ ३२८ ॥

खल एव भुजङ्गस्तस्य-खलभुजङ्गस्य=खलसर्पस्य । विपरीतः = विरुद्धः । वधक्रमः = मारणप्रकारः ॥ ३२९ ॥

सुहृद्भावात् = मित्रतया । 'सेवां विधातुं तु-न युज्यते' इत्यन्वयः ।

अवलिप्तस्य = मदोन्मत्तस्य । उत्पथप्रतिपन्नस्य = कुमार्गगामिनः । गुरोरपि त्यागश्चेत्का वार्त्ताऽन्यस्येति भावः ॥ ३३० ॥

---

१ 'पिशुनोग्रमनुष्यधर्मः' । २ 'कर्णेऽपरं हन्त्यपरं' पा० ।

३ 'नत्वेवंविधस्य' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उक्तञ्च—

महतां योऽपराध्येत 'दूरस्थोऽस्मी'ति नाऽऽश्वसेत् ।
दोर्घौ बुद्धिमतो बाहू ताभ्यां हन्ति स हिंसकम् ॥ ३३१ ॥

तद्युद्धं मुक्त्वा मे नाऽन्यदस्ति श्रेयस्करम् ।

उक्तञ्च—

न तान्हि तीर्थैस्तपसा च लोका-
न्स्वर्गैषिणो दानशतैः सुवृत्तैः ।
क्षणेन यान् यान्ति रणेषु धीराः,
प्राणान्समुज्झन्ति हि ये सुशीलाः ॥ ३३२ ॥
मृतैः सम्प्राप्यते स्वर्गो, जीवद्भिः कीर्तिरुत्तमा ।
तदुभावपि शूराणां गुणावेतौ सुदुर्लभौ ॥ ३३३ ॥
ललाटदेशे रुधिरं स्रवत्तु
शूरस्य यस्य प्रविशेच्च वक्त्रे ।
तत्सोमपानेन समं भवेच्च,
सङ्ग्रामयज्ञे विधिवत्प्रदिष्टम् ॥ ३३४ ॥
होमार्थैर्विधिवत्प्रदानविधिना सद्विप्रवृन्दार्चनै-
र्यज्ञैर्भूरिसुदक्षिणैः सुविहितैः सम्प्राप्यते यत्फलम् ।
सत्तीर्थाश्रमवास-होम-नियमैश्चान्द्रायणाद्यैः कृतैः
पुम्भिस्तत्फलमाहवे विनिहतैः सम्प्राप्यते तत्क्षणात् ॥३३५॥

निर्वृतिः=सुखम् । महतामिति । महतामपराधं कुर्वन्—'अहं ततो दूरे तिष्ठामि, स मे किमपकरिष्यती'ति—नाश्वसेत्=न सन्तुष्येत् । न हृष्येत् ॥३३१॥

न तानिति । स्वर्गैषिणः=स्वर्गार्थिनः । सुवृत्तैः=विधिवदाचरितैः, शोभनैराचारैश्च ॥ ३३२ ॥ एतौ—गुणौ=स्वर्गः, कीर्तिश्च ॥ ३३३ ॥

सोमपानेन समं=सोमयज्ञान्तर्विहितसोमरसपानेन तुल्यं । प्रदिष्टं=धर्मशास्त्रोक्तम् ॥३३४॥ चान्द्रायणादयो—व्रतविशेषाः । आहवे=युद्धे । तत्क्षणात्=सद्यः ।३३५।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तदाकर्ण्य दमनकश्चिन्तयामास—'युद्धाय कृतनिश्चयोऽयं दृश्यते दुरात्मा, तद्यदि कदाचित्तीक्ष्णशृङ्गाभ्यां स्वामिनं प्रहरिष्यति–तन्महानर्थः सम्पत्स्यते। तदेनं भूयोऽपि स्वबुद्ध्या प्रबोध्य तथा करोमि यथा देशान्तरगमनं करोति'। आह च–'भो मित्र! सम्यगभिहितं भवता, परं किन्तु कः स्वामि-भृत्ययोः सङ्ग्रामः?।

उक्तञ्च—

बलवन्तं रिपुं दृष्ट्वा [1]नैवाऽऽत्मानं प्रकोपयेत्।
बलवद्भिश्च कर्तव्या शरच्चन्द्रप्रकाशता ॥३३६॥

अन्यच्च—

शत्रोर्विक्रममज्ञात्वा वैरमारभते हि यः।
स पराभवमाप्नोति समुद्रष्टिट्टिभाद्यथा ॥३३७॥

सञ्जीवक आह—'कथमेतत्?'। सोऽब्रवीत्—

१२. टिट्टिभ-समुद्र-कथा।

कस्मिंश्चित्समुद्रतीरैकदेशे टिट्टिभदम्पती प्रतिवसतः स्म। ततो गच्छति काले ऋतुसमयमासाद्य टिट्टिभी गर्भमाधत्त। अथाऽऽसन्नप्रसवा सती सा टिट्टिभमूचे–'भोः कान्त! मम प्रसवसमयो वर्तते, तद्विचिन्त्यतां किमपि निरुपद्रवं स्थानम्, येन तत्राऽहमण्डकविमोक्षणं करोमि।'

टिट्टिभः प्राह–'भद्रे! रम्योऽयं समुद्रप्रदेशः, तदत्रैव प्रसवः कार्यः'। साऽऽह–'अत्र पूर्णिमादिने समुद्रवेला चरति. सा मत्तगजेन्द्रानपि समा-

---

बलवद्भिश्चेति। बलवद्भिस्तु=बलिभिः। अधिकबलैरिति यावत्। शरच्चन्द्रप्रकाशता=शैत्यं। शान्तिरिति यावत्। अधिकबलेन सह क्रोधो न कार्यः, किन्तु शैत्यमेवादरणीयम्। समानैरेव हि कलहः, युद्धं सन्धिश्च युक्ताविति भावः ॥३३६॥

ऋतुसमयं=गर्भाधानसमयम्। टिट्टिभः = पक्षिभेदः ('टिटिहरी')। प्रसवसमयः=प्रसूतिकालः, वर्त्तते=सन्निहितो वर्त्तते। समुद्रवेला चरति=समुद्रजलमिहा-

---

१. 'किलात्मानं न कोपयेत्' पा०। 'किलात्मानं प्रकोपयेत्' पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर्षति, तद्दूरमन्यत्र किञ्चित्स्थानमन्विष्यताम्' ।

तच्छ्रुत्वा विहस्य टिट्टिभः प्राह—'भद्रे ! न युक्तमुक्तं भवत्या, का मात्रा समुद्रस्य, यो मम प्रसूतिं दूषयिष्यति । किं न श्रुतं भवत्या—

रुद्धाऽम्बरचरमार्गं व्यपगतधूमं सदा महद्भयदम् ।
मन्दमतिः कः प्रविशति हुताशनं स्वेच्छया मनुजः ॥३३८॥
मत्तेभकुम्भविदलन-कृतश्रमं सुप्तमन्तकप्रतिमम् ।
यमलोकदर्शनेच्छुः सिंहं बोधयति को नाम ? ॥३३९॥
को गत्वा यमसदनं स्वयमन्तकमादिशत्यजातभयः ।
'प्राणानपहर मत्तो, यदि शक्तिः काचिदस्ति तव' ॥३४०॥
प्रालेयलेशमिश्रे मरुति प्राभातिके च वाति जडे ।
गुणदोषज्ञः पुरुषो जलेन कः शीतमपनयति ? ॥३४१॥

तस्माद्विश्रब्धाऽत्रैव गर्भं मुञ्च ।

उक्तञ्च—

यः पराभवसन्त्रस्तः स्वस्थानं सन्त्यजेन्नरः ।
तेन चेत्पुत्त्रिणी माता, तद्वन्ध्या केन कथ्यते ? ॥३४२॥

तच्छ्रुत्वा समुद्रश्चिन्तयामास—'अहो गर्वः पक्षिकीटस्याऽस्य । अथवा साध्विदमुच्यते—

याति । ('ज्वार भाटा') । मात्रा = सामर्थ्यम् । दूषयिष्यति = अपहरिष्यति । प्रसूतिं = सन्ततिम् । रुद्धाम्बरचरमार्गं = निरुद्धपक्षिमार्गं । व्यपगतधूमं = ज्वाला-मलिनम् ॥ ३३८ ॥

अन्तकप्रतिमं = मृत्युसदृशम् । अन्तकं = यमराजम् ॥ ३४० ॥

प्रालेयलेशमिश्रे = तुषारकणसम्पर्कभीषणे । ('बर्फानी हवा') । कोऽपनयति = न कोऽपीत्यर्थः ॥ ३४१ ॥

---

१. 'ज्वालाशतरुद्धाम्बरमपगतधूमं सदा महाभयदम्' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्क्षिप्य टिट्टिभ पादावास्ते भङ्गभयाद्दिवः ।
स्वचित्तकल्पितो गर्वः कस्य नाऽत्रापि विद्यते ? ॥३४३॥

तन्मयाऽस्य प्रमाणं कुतूहलादपि द्रष्टव्यं, किं ममैषोऽण्डापहारे कृते करिष्यति ?' । इति चिन्तयित्वा स्थितः ।

अथ प्रसवाऽनन्तरं प्राणयात्रार्थं गतायाष्टिट्टिभ्याः समुद्रो वेलाव्याजेनाऽण्डान्यपजहार ।

अथाऽऽयाता सा टिट्टिभी प्रसवस्थानं शून्यमवलोक्य प्रलपन्ती टिट्टिभमूचे-'भो मूर्ख ! कथितमासीन्मया ते यत्—समुद्रवेलयाऽण्डानां विनाशो भविष्यति, तद् दूरतरं व्रजावः । परं मूढतयाऽहङ्कारमाश्रित्य मम वचनं न करोषि । अथवा साध्विदमुच्यते—

सुहृदां हितकामानां न करोतीह यो वचः ।
स कूर्म इव दुर्बुद्धिः काष्ठाद् भ्रष्टो विनश्यति ॥ ३४४ ॥

टिट्टिभ आह—'कथमेतत् ?' । साऽब्रवीत्—

१३ कम्बुग्रीवाख्य-मूर्ख-कच्छपकथा ।

अस्ति कस्मिंश्चिज्जलाशये कम्बुग्रीवो नाम कच्छपः । तस्य च सङ्कटविकटनाम्नी मित्रे हंसजातीये परमस्नेहकोटिमाश्रिते नित्यमेव सरस्तीरमासाद्य तेन सहाऽनेकदेवर्षि-महर्षीणां कथाः कृत्वाऽस्तमयवेलायां स्वनीडसंश्रयं कुरुतः । अथ गच्छता कालेनाऽनावृष्टिवशात्तत्सरः शनैः शनैः शोषमगमत् । ततस्तद्दुःखदुःखितौ तावूचतुः-'भो मित्र ! जम्बाल-

---

विश्रब्धा=निश्चिन्ता । पक्षिकीटस्य=विहगापसदस्य । आस्ते=तिष्ठति । शेते । दिवः=गगनस्य । भङ्गभयात्=पतनभयात् ॥ ३४३ ॥

प्रमाणं=बलम् । प्राणयात्रार्थं=भोजनसामग्रीसमुच्चयार्थम् । वेलाव्याजेन=जलवृद्धिमिषेण । न करोषि=नाकार्षीः । वर्त्तमानसामीप्ये भूते लट् । 'न कृतवानसी'तितु परे पठन्ति । हंसजातीये=हंसजात्युत्पन्ने, हंसाविति यावत् । स्वनीडसंश्रयं=स्वकुलायाश्रयणं । (नीड='घोंसला') । जम्बालशेषम्=पङ्का-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शेषमेतत्सरः सञ्जातं, तत्कथं भवान्भविष्यतीति व्याकुलत्वं नो हृदि वर्त्तते ।' तच्छ्रुत्वा कम्बुग्रीव आह-'भो ! साम्प्रतं नाऽस्त्यस्माकं जीवितव्यं, जलाऽभावात्, तथाऽप्युपायश्चिन्त्यतामिति ।

उक्तञ्च--

त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले,
धैर्यात्कदाचित्स्थितिमाप्नुयात्सः ।
[1]जाते समुद्रेऽपि च पोतभङ्गे,
सांयात्रिको वाञ्छति तर्त्तुमेव ॥ ३४५ ॥

अपरञ्च--

मित्रार्थे, बान्धवाऽर्थे च बुद्धिमान् यतते सदा ।
जातास्वापत्सु यत्नेन, जगादेदं वचो मनुः ॥ ३४६ ॥

तदानीयतां काचिद् दृढरज्जुर्लघु काष्ठं वा । अन्विष्यतां च प्रभूतजलसनाथं सरः । येन मया मध्यप्रदेशे दन्तैर्गृहीते सति युवां कोटिभागयोस्तत्काष्ठं मया सहितं संगृह्य तत्सरो नयथः ।'

तावूचतुः-'भो मित्र ! एवं करिष्यावः, परं भवता मौनव्रते स्थातव्यम्, नो चेत्तव काष्ठात्पातो भविष्यति ।'

तथाऽनुष्ठिते गच्छता कम्बुग्रीवेणाऽधोभागव्यवस्थितं किंचि

वशेषम् = 'निषद्वरस्तु जम्बालः पङ्कोऽस्त्री शादकर्दमौ' इत्यमरः । भविष्यति = प्राणान् धरिष्यति ।

विधुरे=विपत्तिकालेऽपि । स्थितिं=विपत्तिविनाशम् । 'गति'मिति पाठान्तरम् । समुद्रे-पोतभङ्गे = वहित्रनाशे जातेऽपि । तर्त्तुमेव—जले, पुनरपि वाणिज्यार्थं वा समुद्रगमनमेव । वाञ्छति=इच्छति,करोति च । धनञ्चोपार्जयतीत्याशयः ॥३४५॥

विपत्तिषु जातासु बुद्धिमान् मित्राद्यर्थे सुदृढं यतेतेत्यर्थः ॥ ३४६ ॥

लघु = स्वल्पं, (हल्का) । कोटिभागयोः = अग्रकोणभागयोः । तथाऽनु-

---

1 'यथा समुद्रेऽपि हि' पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

BHARATIYA VIDYA BHAVAN
Curzon Road, New Delhi-१४७

ालोकितं, तत्र ये पौरास्ते तं तथा नीयमानं विलोक्य सविस्मयमिदमूचुः-
अहो ! चक्राऽऽकारं किमपि पक्षिभ्यां नीयते, पश्यत ! पश्यत' !! ।

अथ तेषां कोलाहलमाकर्ण्य कम्बुग्रीव आह 'भोः ! किमेष कोलाहलः ? ।' इति वक्तुमना[1] अर्धोक्तिपतितः, पौरैः खण्डशः कृतश्च । अतोऽहं ब्रवीमि-'सुहृदां हितकामानाम्-'इति ॥ ❀ ।

इति कम्बुग्रीवमूर्खकच्छप-कथा[2] ।

ो = [illegible]ुकाष्ठखण्डे-तं संस्थाप्य नीते सति । पौराः = पुरवासिनः । तैः ।
र्धोक्तिपतितः = अर्धवचनानन्तरमेव पतितः ।

इति श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिभिर्निर्मितायां पञ्चतन्त्राऽभिनव-
राजलक्ष्मी-टीकायां मित्रभेदे (परीक्षायां नियतः)
कम्बुग्रीवकथान्तो भागः ।

संस्कर्त्ता—आचार्य-श्रीसीतारामशास्त्री,
'व्याकरणाचार्यः', 'साहित्यरत्नं' 'राजशास्त्री',
प्रिन्सिपल—सेठ-श्रीराधाकृष्णपोद्दार-संस्कृत-विद्यालय,
रामगढ़-जयपुर ।

---

१ 'अर्द्धोक्तावेव पतितः'-इत्यन्ये पठन्ति ।
२ एतावानेव भागः काशिकपरीक्षायां मध्यमाप्रथमखण्डे पाठ्यतया निर्धारितः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[अब सभी विद्यार्थी इसी लघुकौमुदी को ही ले रहे हैं,
आप भी इसे ही मँगाइये ।]

लघुसिद्धान्तकौमुदी

काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान्

श्रीगुरुप्रसादशास्त्रीकृत

सरला टीका तथा भाषा टीका सहित

यद्यपि 'लघुकौमुदी' की बहुत-सी टीका व टिप्पणियाँ छपी हैं पर सरला टीका की सरलता को तथा भाषा टीका को देख अवश्य प्रसन्न होंगे। जो विषय अन्य टीकाओं में बहुत विस्तार और जटिल भाषा में हैं वे ही इसमें थोड़े शब्दों में सरलतापू समझा कर लिखे गये हैं। छोटे-छोटे बालकों को थोड़े शब्दों में सरला टीका द्वारा विषयों का निचोड़ मालूम हो सकेगा। जिन सू की वृत्तियाँ नहीं थीं उनकी वृत्तियाँ दे दी गयीं हैं।

भाषा टीका

इसमें सूत्रों का अर्थ तथा सूत्रों का भाषा में लिखा गया है। प्रा ५० वर्षों के प्रश्नपत्रों सहित मूल्य ५)

Shankaracharya Sanskrit
531

प्रकाशक–

भागवपुस्तकालय, गायघाट, बनारस १.

ब्राञ्च–कचौड़ीगली, बनारस ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.